सरल
जैनधर्म-प्रवेशिका
[चौथा-भाग]

लेखक —
मोहनलाल जैन, काव्यतीर्थ,
बरायठा (सागर) सी० पी०

प्रकाशक —
व्यवस्थापक, सरल प्रज्ञा पुस्तकमाला
मु० लुहर्रा, पो० मड़ावरा,
जिला—झाँसी, यू० पी०

तृतीय संस्करण १०००	अनन्तचतुर्दशी वीर नि० सं० २४७३	मूल्य ।।-) नौ आना

विषयानुक्रमणिका

आभार प्रदर्शन—

इस पुस्तक में जिन विद्वानों और कवियों के लेख या काव्यों का संग्रह किया गया है उनके हम अतिशय आभारी हैं।

इस पुस्तक के सम्पादन वा प्रकाशन के हेतु जिन विद्वानों ने सहयोग, प्रोत्साहन और साधुवाद दिया है, उन्हीं की कृपा से यह ग्रन्थ आज अपनी तृतीयावृत्ति से प्रकाश में आ रहा है। इसकी आवश्यकता, सरलता और सुन्दरता का परिज्ञान पाठकगण स्वयं करेंगे। यह पुस्तक भा० दि० जैन परीक्षालय सोलापुर की परीक्षा के कोर्स में रखी जा चुकी है। छात्रों को अब इसी में प्रवेश फार्म भरना चाहिये।



सरल जैनधर्म-प्रवेशिका

चौथा-भाग

पाठ पहला

स्थाप

ओं जय जय जय, नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं। ओं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः
२ (पुष्पांजलिं क्षिपेत्) यह पढ़ कर थाल में पुष्प छोड़ना चाहिये।

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो, धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। ओं नमोऽर्हते स्वाहा (पुष्पांजलिं क्षिपेत्।)

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा। ध्यायेत्पंचनमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यंतरः शुचिः ॥२॥ अपराजितमंत्रोऽयं, सर्वविघ्नविनाशनः। मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं

मंगलं मत ॥३॥ एसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो। मंग लाण च सव्वेसिं पढमं होइ मगल ॥४॥ अर्हमित्यक्षर ब्रह्म, वाचकं परमेष्ठिन। सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वत प्रणमाम्यहम् ॥५॥ कर्माष्टकविनिर्मुक्त, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम्। सम्यक्त्वादिगुणोपेत, सिद्धचक्र नमाम्यहम् ॥६॥ उदकचन्दनतंदुलपुष्पकै, चरुसुदीपसुधूप फलार्घकै। धवलमगलगानर वाकुले जिनगृहे जिननाम न्वह यजे॥

ओं ह्रीं भगवज्जिनसहस्रनामधेयेभ्य अर्घ निर्वपामीति स्वाहा

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं, स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम्। श्रीमूलसघसुदृशा सुकृतैकहेतु जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मया भ्यधायि ॥१॥ स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय, स्वस्ति स्वभाव महिमोदयसुस्थिताय। स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय॥२॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय। स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय, स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय॥३॥ द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूप, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकाम॥ आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्, भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥४॥ अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि, वस्तूनि नूनमखिलान्ययमेक एव। अस्मिञ्ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ, पुण्य समग्रमहमेकमना जुहोमि॥

श्री वृषभो न स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजित। श्री सभव स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दन। श्री सुमित स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभ। श्रीसुपार्श्व स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभ। श्री पुष्पदत स्वस्ति,स्वस्ति श्री शीतल। श्री श्रेया स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्य। श्री विमल स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्त। श्री धर्म स्वस्ति, स्वस्ति श्री शाति। श्री कुन्थु स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथ। श्री मल्लि स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रत। श्री नमि स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथ। श्री पार्श्व स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्धमान।

❀ श्री देवशास्त्रगुरुपूजा ❀



स्थापना

प्रथम देव अरिहंत सुश्रुत सिद्धांतजी ।
गुरु निर्ग्रन्थ महन्त मुकतिपुर पथनी ॥
तीन रतन जगमाहिं सो ये भवि ध्याइये ।
तिन की भक्ति-प्रसाद परम पद पाइये ॥
पूजों पद अरिहंत के, पूजों गुरुपद सार ।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्ट प्रकार ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, इति आह्वाननम् । ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ इति स्थापनम् । ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्, इति सन्निधीकरणं । परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर वन्दनीक सुपदप्रभा ।
अतिशोभनीक सुवर्ण उज्ज्वल देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीर समुद्र घट भर अग्र तसु बहुविधि नचूं ।
अरिहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचूं ॥१॥
मलिन वस्तु हर लेत सब जल स्वभाव मलछीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशाय जलम् ।

जे त्रिजग उदर मझार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे ।
तिन अहितहरण शुभ वचन जिनके परम शीतलता भरे ॥

तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन सरस चंदन घसि सचूं।
अरिहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचूं ॥२

चंदन शीतलता करे, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं।

यह भव समुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठही।
अति दृढ़ परम पावन जथारथ भक्ति वरनौका सही ॥
उज्ज्वल अखंडित शालि तंदुल पुंजधर त्रयगुण जचूं।
अरिहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचूं ॥३

तंदुल शालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।

जे विनयवंत सुभव्य उर अंबुज प्रकाशन भान हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषित त्रिजग मांहि प्रधान हैं ॥
लहि कुंद कमलादिक पहुप भव भव कुवेदन सों बचूं।
अरिहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचूं ॥४

विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥४॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविनाशनाय पुष्पम्।

अतिसबल मद कंदर्प जाको क्षुधा उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सुगरुड़ समान है ॥

उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य कर घृत में पचू।
अरिहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचू॥५

नाना विधि संयुक्तरस, व्यञ्जन सरस नवीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥५॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यम्।

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोह तिमिर महाबली।
तिह कर्मघाती ज्ञानदीप प्रकाश जोति प्रभावली॥
इह भांति दीप प्रजाल कञ्चन के सुभाजन में खचू।
अरिहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचू॥६

स्वपर प्रकाशक जोति अति, दीपक तमकर हीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥६॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशाय दीपम्।

जो कर्म ईंधन दहन अग्नि समूह अति उद्धत लसै।
वर धूप तास सुगंधता कर सकल परिमलता हँसै॥
इह भांति धूप चढ़ाय नित भवज्वलनमाहिं नहीं पचू।
अरिहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचू॥७

अग्नि माहिं परिमल दहन, चन्दनादि गुण लीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥७॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अष्टकर्म विनाशाय धूपम्।

लोचन सुरसना घ्राण उर उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी सकल फल गुणसार हैं॥
सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन परम अमृत रस सचू।
अरिहंत श्रुत सिद्धांत गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचू॥८

जे प्रधान फल फल विषैं, पचकरण रस लीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य मोक्षफलप्राप्तये फलम्।
जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जन्म के पातक हरूं॥
इहि भांति सुकृत अपार तारण करत शिव पद्धति मचू।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु निर्ग्रंथ नित पूजा रचू॥
वसु विध अर्घ सँजोय कर, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥९॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य अनर्घपदप्राप्तये महार्घ्यम्।

जयमाला

देवशास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुण विस्तार॥
जे करम * तिरेसठ प्रकृति नाश,
जीते अष्टादश दोष राश।
जे परम सुगुण हैं अनन्त धीर,
कहवत के छ्यालिस गुण गँभीर॥१
शुभ समवसरण शोभा अपार,
शत इन्द्र नमत कर शीश धार।

*घातिया कर्मों की ४७ तथा नरकतियगति २, तदानुपूर्वी २, विकलत्रय ३, आयु ३, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय साधारण, सूक्ष्म और स्थावर॥ ६३॥

देवाधिदेव अरिहंत देव,
वन्दों मनवचतन कर सुसेव ॥२॥
जिन की ध्वनि है ओंकाररूप,
निरअक्षरमय महिमा अनूप ॥
दश अष्ट महाभाषा समेत,
लघु-भाषा सात शतक सुचेत ॥३॥
सो स्याद्वादमय सप्तभङ्ग,
गणधर गूंथे बारह सुअङ्ग ॥
रवि शशि न हरैं सो तम हराय,
सो शास्त्र नमूँ बहु प्रीति लाय ॥४॥
गुरु आचारज उवझाय साध,
तन नगन रत्नत्रयनिधि अगाध ॥
संसार देह वैराग धार,
निरवांछ तपैं शिवपद निहार ॥५॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस,
भवतारण तरण जिहाज ईश ।
गुरु की महिमा वरणी न जाय,
गुरुनाम जपों मनवचनकाय ॥६॥

कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति बिना श्रद्धा धरो।
'द्यानत' श्रद्धावान्, अजर अमर पद भोगवे ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अनर्घपदप्राप्तये महार्घ्यम् ।

शान्तिपाठ (भाषा—हिन्दी)



शान्तिनाथ मुख शशिउनहारी, शीलगुणव्रतसंयमधारी ।
लखन एकसौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमल दल लाजैं ॥
पचम चक्रवर्तिपद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी ।
इन्द्रनरेन्द्रपूज्य जिननायक, नमों शांतिहितशांतिविधायक ॥
दिव्यविटप पहुपन की बरषा, दुन्दुभि आसन वाणीसरसा ।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥
शांति जिनेश शांति सुखदाई, जगतपूज्य पूजौं सिर नाई ।
परमशांति दीजे हम सब को, पढ़ें तिन्हें, पुनि चारसंघ को ॥

पूजैं जिन्हें मुकुटहार किरीट लाके,
इन्द्रादिदेव, अरु पूज्य पदाब्ज जाके ।
सो शांतिनाथ वरवंशजगत्प्रदीप,
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥

सपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों वा यतिनायकों को ।
राजाप्रजाराष्ट्रसुदेश काले, कीजे सुखी हजिन शांतिको द ॥
होवै सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा,
होवे वर्षा समै पै, तिलभर न रहै, व्याधियों का अँदेशा ।
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरतै, हो न दुष्काल भारी,
सारे ही देश धारैं, जिनवरवृषको, जो सदासौख्यकारी ॥

घातिकर्म जिन नाश कर, पायो केवलराज ।
शांति करें ते जगत में, वृषभादिक जिनराज ॥

शास्त्रों का हो, पठन सुखदा, लाभ सत्सङ्गती का,
  सद्वृत्तों का, सुजस कहके, दोष ढाकूं सभी का।
बोलूँ प्यारे, वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ,
  तौलों सेऊँ, चरन जिन के, मोक्ष जौलों न पाऊँ॥

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तबलों लीन रहे प्रभु, जबलों प्राप्ती न मुक्तिपद की हो॥
अक्षरपद मात्रा से, दूषित जो कछु कहा गया मुझ से।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणाकरि पुनि छुड़ाव भवदुखसे॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी॥

विसर्जन (भाषा-हिन्दी)



बिन जाने वा जान के, रही टूट जो कोय।
तुव प्रसादतें परमगुरु, सो सब पूरन होय॥१॥
पूजन विधि जानूँ नहीं, नहि जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं, क्षमा करो भगवान॥२॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरण की सेव॥३॥
आये जो जो देवगण, पूजे भक्ति प्रमान।
ते अब जावहु कृपा कर, अपने अपने थान॥४॥

[हारमोनियम पर कई व्यक्तियों द्वारा मिलकर गाने योग्य]

❀ ईश-प्रार्थना ❀



कलिमलगञ्जन भविमनरञ्जन, भक्त जनों के हैं भयभञ्जन।
तुमहिं निरञ्जन देव जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ १ ॥
आप अनन्त ज्ञान के स्वामी, वीतराग छ्यालिस गुणगामी।
हित उपदेशी देव, जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ २ ॥
परमपूज्य तुम को लख कर के, सब शत्रे द्रु सुर पशु अरु नर के।
करते हैं नितसेव जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ ३ ॥
मुनिजन तुमको ध्येय बनाकर, प्रभो आपका रम्य ध्यान धर।
करते नितप्रति सेव, जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ ४ ॥
सकल सुरासुर वन्दनीय हो, कर्म कलङ्क निकन्दनीय हो।
हे त्रिभुवन के देव, जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ ५ ॥
जो मानव तुमको ध्याता है, वह भी दुःखरहित होता है।
अजर अमर स्वयमेव, जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ ६ ॥
मेरे उर में बसो सदा, जिससे जग की आपदापदा।
नशे नाथ स्वयमेव जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ ७ ॥
नाथ तिहारे नित गुण गाऊँ तुम्हें हृदय का हार बनाऊँ।
तज कर और कुदेव, जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ ८ ॥
आव निरञ्जन नाथ पधारो मन मन में निज ज्योति पसारो।
दो अब ज्ञान अछेव जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ ९ ॥
हितकारी है मार्ग तुम्हारा, भव्यजनों को परम पियारा।
नाशक कर्म कुटेव, जगत में जयवन्तो जिनदेव ॥ १० ॥



❀ पूजा या पूजन ❀



अरिहन्त, सिद्ध, दिगम्बर साधु, जिनवाणी और जिन तीर्थ स्थान आदि की स्तुति करना या उन्हें अष्टद्रव्य चढ़ाना पूजा कहलाती है। यह पूजन दो प्रकार की होती है। १—द्रव्यपूजन और २—भावपूजन।

उपर्युक्त अरिहन्त आदि की उनका गुणगान करते हुए जल, चन्दन आदि द्रव्य भेंट चढ़ाना द्रव्यपूजा कहलाती है। और अष्टद्रव्य बिना शुद्ध मन से केवल गुणगान करना भावपूजन कहलाती है।

आरम्भ और परिग्रह रहित, २८ मूलगुणों के धारी दि० जैन साधु भावपूजन ही करते हैं, वे द्रव्यपूजन नहीं करते। क्योंकि वे किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखते और आरम्भ नहीं करते। वे इतने सावधान होते हैं, कि बाह्य अवलम्बन के बिना ही केवल अपने शुद्ध भावों से अरिहन्त, सिद्ध या शुद्ध आत्मा का ध्यान कर लेते हैं।

गृहस्थों का चित्त सांसारिक कार्यों में खिचा रहता है। इसलिये गृहस्थों के लिये द्रव्यपूजा के द्वारा ही भावपूजन का कथन है।

गृहस्थ श्रावक आरम्भ और परिग्रह सहित हैं। इसलिये अशुभोपयोग से हट कर शुभोपयोग में प्रवृत्त होने के लिये उन्हें द्रव्य से देवपूजन करना अनिवार्य या परमावश्यक है। क्योंकि अशुभोपयोग से हटकर एकदम शुद्धोपयोग में लगना टेढ़ी खीर है।

द्रव्यपूजा करने में यद्यपि कुए से जल भरना, जल को अग्नि पर प्रासुक करना और सामग्री धोना आदि आरम्भ

पड़ता है, तो भी शुभोपयोग से होने वाले इस आरम्भ से पाप तो थोड़ा होता है किन्तु पुण्य ज्यादा होता है। इसलिये यह थोड़ा पाप द्रव्यपूजन-जनित महान् पुण्यराशि में कोई दोष पैदा नहीं कर सकता। जैसे विष के कुछ कण समुद्र में डाल दिये जाय तो वे समुद्र की अथाह जलराशि को विषमय नहीं कर सकते। अर्थात् जैसे समुद्र की जलराशि में वह विष छिप जाता है, वैसे ही द्रव्यपूजा के आरम्भ से होने वाला पाप भी द्रव्यपूजा से उत्पन्न पुण्यराशि में छिप जाता है। क्योंकि 'अपारगुणों में एक दुर्गुण छिप ही जाता है' यह नीतिप्रसिद्ध बात है।

यह पूजा इसलिये नहीं की जाती है कि हम पूज्यों को प्रसन्न करें। वे तो वीतराग होते हैं-न तो हमारी प्रशंसा से राजी होकर हमें कुछ देते हैं, न हमारे द्वारा की गई निन्दा से नाराज होकर हमारा कुछ बिगाड़ ही करते हैं। उनका पूजन केवल अपने भावों की (निर्मलता) और पापों के विनाश के लिये ही किया जाता है।

यह नियम है कि—गुणों के मनन से अपने भाव गुणप्रेमी तथा अवगुण के मनन से अपने भाव दोषी बन जाते हैं। हमारे भावों से ही हमारा भला या बुरा होता है। अरिहन्त आदिक परम वीतराग हैं। इनकी भक्ति से हमारे भावों में शान्ति आती है। भक्तिमय शान्त भावों से हमारे पाप कटते हैं और पुण्य का लाभ होता है। इसलिये प्रत्येक आत्महितैषी को पूजन अवश्य करना चाहिये। यह पूजन श्रावक के षट्कर्मों में प्रथम कर्त्तव्य है। पूजन के भावमात्र से राजगृही नगरी के मेंढक को उत्तम फल मिला था।

जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल ये पूजा की अष्ट द्रव्य हैं। अर्घ इनके मिश्रण को ही कहते हैं। ये द्रव्यें शुद्ध, उत्तम और यथाशक्ति होना चाहिये।

अष्टद्रव्य चढ़ाने का फल या कारण—

(सागारधर्मामृत या ओं ह्रीं के आधार से)

१—जल चढाने से पाप या जन्म जरा मृत्यु का नाश, २—चन्दन चढ़ाने से शरीर में सुगंध की प्राप्ति या संसारताप का नाश, ३—अक्षत चढाने से अष्टऋद्धि या सम्पत्ति की प्राप्ति या अक्षय पद की प्राप्ति, ४—पुष्प चढ़ाने से मंदारमाला की प्राप्ति या कामवेदना का नाश, ५—नैवेद्य चढाने से लक्ष्मीपतित्व की प्राप्ति या क्षुधारोग का नाश, ६—दीप चढाने से सौन्दर्य की प्राप्ति या अज्ञानरूप अन्धकार का नाश, ७—धूप चढाने से परमसौभाग्य की प्राप्ति या अष्टकर्म का नाश, ८—फल चढ़ाने से मनोवाछित या मोक्ष फल की प्राप्ति, और ९—अर्घ चढ़ाने से विशेष मान-प्रतिष्ठा या आदरणीय पद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अष्ट द्रव्य चढ़ाने का फल जानना चाहिये।

विशेष—

विशेष —१—खड़े होकर पूजन करने में विशेष आदर और भक्ति सूचित होती है, इसलिये पूजन खड़े होकर करना विशेष महत्त्व का है। २—अष्टक के छन्दों के बाद 'ओं ह्रीं' अवश्य बोलना चाहिये। ३—अष्टद्रव्य (जल आदि) क्रम से ही चढ़ाना चाहिये। ४—जिसकी पूजा की जाती है जयमाला में उसी के गुणों का वर्णन होता है। ५—आह्वान, स्थापना, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन ये पाँच 'पूजा के अङ्ग' हैं, पूजा में इनका करना आवश्यक है। ६—स्नान के बाद शुद्ध वस्त्र पहिन कर, मन की चंचलता रोक कर भक्तिपूर्वक शांतभावों से पूजन करना चाहिये।

प्रश्नावली—

१—अर्घ, जयमाला, द्रव्य पूजा, पूजा और भावपूजा से आप क्या समझते हैं ?

२—अष्टद्रव्य, उत्तमवस्तु, तीन रतन, पूजन, मङ्गल और शरण के भेद बतलाइये ?

३—लोक में सर्वोत्तमधर्म कौन है ?

४—तुम्हारे लिये सच्चा मङ्गल और शरण कौन हैं ?

५—देवशास्त्रगुरु पूजन किसने बनाई है ?

६—पूजन किस किस की की जाती है ?

७—पूजन करने वाले को सब से पहिले और सब से अन्त में क्या करना चाहिये ?

८—पूजन खड़े होकर करना चाहिये या बैठकर ? या क्यों ?

९—पूजन के लिये किन किन चीजों की जरूरत होती है ।

१०—अष्टद्रव्य का क्रम क्या है, अक्रम भी किया जा सकता है क्या ?

११—अमुक द्रव्य चढाने का छन्द पढ़ो और बतलाओ कि छन्द के बाद क्या कह कर द्रव्य चढाई जाती है ?

१२—पूजन और अष्टद्रव्य का फल बतलाइये ?

१३—आह्वान, पूजन, विसर्जन, शान्तिपाठ और स्थापना कब और क्यों किये जाते हैं ?

१४—वे त्रेसठ प्रकृतियाँ कौन हैं जिनका नाश अरिहंत करते हैं ?

१५—सच्चे गुरु, देव, शास्त्र का संक्षिप्त वर्णन कीजिये ?

१६—शान्ति-पाठ और विसर्जन करते समय क्या करना चाहिये ?

१७—जयमाल में किस बात का वर्णन होता है ?

१८—अमुक छन्द पूर्ण करो ?

पाठ दूसरा
पंच परमेष्ठी के मूल गुण



परमेष्ठी का लक्षण—

जो धार्मिक पदों में सबसे उत्तमपद के धारी होते हैं, लोक में गुणों की अपेक्षा सब से बड़े होते हैं और बड़े बड़े राजा महाराजा वा इन्द्र आदि जिनको मस्तक झुकाते हैं उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

परमेष्ठी के भेद—

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये ५ परमेष्ठी हैं। क्योंकि इनसे बड़ा पद अन्य किसी का नहीं होता।

अरिहन्त परमेष्ठी का लक्षण—

जिनके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं, जिनमें ४६ मूलगुण होते हैं, अठारह दोष नहीं होते और जो वीतराग, सर्वज्ञ तथा हितोपदेशी होते हैं उन्हें अरिहन्त परमेष्ठी कहते हैं।

अरिहन्त परमेष्ठी के मूलगुण—

चौंतीसों अतिशयसहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनन्तचतुष्टय गुणसहित, ये छ्यालीसों पाठ ॥

इस पाठ के समस्त श्लोक स्वर्गीय कविवर पं० बुधजनकृत छहढ़ाला से लिये गये हैं। परमे इन्द्रादिवन्द्ये पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी।

३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य और ४ अनन्तचतुष्टय ये ४ अरिहन्त के मूलगुण हैं। इनके सिवाय और भी उत्तरगुण अनन्त ह

अतिशयों के भेद या नाम—

दश अतिशय हैं जन्म के, दश ही केवलज्ञान।
चौदह होते देवकृत, अतिशय चौंतिस जान॥

जन्म के अतिशय १०, केवलज्ञान के अतिशय १० और देवकृत अतिशय १४, इस प्रकार ३४ अतिशय होते हैं।

अतिशय का लक्षण—सब साधारण प्राणियों में न प जाने वाली अद्भुत या अनोखी बात को अतिशय कहते हैं।

जन्म के दश अतिशयों के नाम—

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रियहित वचन अतुल्य बल, रुधिरश्वेत आकार॥
लक्षण सहस रु आठ तन, समचतुष्क सठान।
वज्रवृषभ नाराचजुत, ये जनमत दश जान॥

१—शरीर में अत्यन्त सुन्दरता, २—शरीर में अत्य सुगन्ध होना, ३—शरीर में पसीना न आना, ४—मलमू होना, ५—वचन का हित, मित और प्रिय होना, ६—बल अतुल* होना, ७—खून सफेद होना, ८—शरीर में १००८ लक्ष होना, ९—समचतुरस्रसंस्थान × होना और १०—वज्रवृषभ राचसंहनन* होना ये दस अतिशय (आश्चर्यजनक अस) या अनोखी बातें) अरिहन्त भगवान के जन्म से ही होते हैं।

---

*अतुल=अनुपम अर्थात् जिनकी बराबरी का कोई दूस नहीं। लक्षण=श्रीवृक्ष, शंख, कमल, स्वस्तिक आदि। ×सुडे सुन्दर आकार, *हाड़, बेठन और कीलों का वज्रमय होना।

केवलज्ञान के अतिशयों के नाम—

योजन शतइक में सुभिख, गगनगमन मुख चार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार॥
सब विद्या ईश्वर पनो, नाहिं बढ़े नख केश।
अनिमिष दृग छायारहित, दश केवल के वेश॥

१—भगवान अरिहन्त के चारों ओर सौ सौ योजन में सुकाल होना, २—गमन पृथ्वी से ऊपर आकाश में अधर होना, ३—एक होने पर भी चारों ओर चार मुख दिखना, ४—अदया (हिंसा) का न होना ५—उपसर्ग न होना, ६—कवलाहार (ग्रास वाला) आहार न लेना, ७—समस्त विद्याओं का ज्ञाता होना, ८—नख और केशों का न बढ़ना, ९—नेत्रों की पलकें न झपना और १०—शरीर की छाया (परछांई) न पड़ना। अरिहन्त भगवान के ये १० अतिशय केवलज्ञान होने के समय प्रगट होते हैं। इससे इन्हें केवलज्ञान के अतिशय कहते हैं।

देवकृत अतिशयों के नाम—

देवरचित हैं चार दश, अर्धमागधी भाष।
आपस माहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश॥
होत फूलफल ऋतु सबै, पृथ्वी काच समान।
चरण कमल तल कमल हैं, नभतैं जय जय वान॥
मन्द सुगन्ध बयार पुनि, गन्धोदक की वृष्टि।
भूमि विषैं कंटक नहीं, हर्षमई सब सृष्टि॥
धर्मचक्र आगे रहै, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्रीअरिहन्त के, ये चौतीस प्रकार॥

१—भगवान् की भाषा अर्धमागधी* होना, २—समस्त जीवों में परस्पर मित्रता होना, ३—दिशाओं का निर्मल होना, ४—आकाश निर्मल होना, ५—छहों ऋतुओं के फलफूल धान्य आदिक एक ही समय फलना, ६—एक योजन तक की पृथिवी दर्पण की तरह निर्मल होना ७—चलते समय भगवान के चरणों के नीचे सुवर्ण कमल रचना, ८—आकाश में जय जय शब्द होना, ९—मन्द और सुगन्धित पवन चलना, १०—सुगन्धमय जल की वृष्टि होना ११—पवनकुमार देवों द्वारा भूमि का कंटक रहित होना, १२—समस्त प्राणियों को आनन्द होना, १३—भगवान् के आगे धर्मचक्र चलना और १४—अष्टमंगल† द्रव्यों का साथ रहना ये १४ देवकृत अतिशय हैं। ये देवों के द्वारा किये जाते हैं, इसलिये इन्हें देवकृत कहते हैं। ये देवकृत अतिशय भी केवलज्ञान होने पर ही होते हैं।

प्रातिहार्यों के नाम—

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिर पर लसें, भामण्डल पिछवार॥
दिव्यध्वनि मुखतें खिरें, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढोरें चौंसठ चमर जख बाजें दुंदुभि जोय॥

* सात प्रकार की प्राकृत भाषा में एक मागधी जाति की है। कहा भी है कि—मागध्यावृन्तिका प्राच्या, सारसेन्यर्धमागधी वाह्लीकी दाक्षिणात्या च भाषा सप्त प्रकीर्तिता॥

† झारी, चमर, दर्पण, स्वस्तिक (ठौना), कलश, पंखा, ध्वजा और छत्र ये अष्टमंगल द्रव्य हैं।

सिंहासन व छत्र आदि प्रथम तो इन्द्रादिक देवों द्वारा रचे जाते हैं दूसरे उनमें मोह का सर्वथा अभाव होता है इसलिये इनके होने पर भी अरिहन्त अपरिग्रही हो हैं।

१—भगवान के पास में *अशोक वृक्ष का होना, २—रत्नमय × सिंहासन, ३—भगवान के शिर पर तीन छत्रों का होना, ४—भगवान् की पीठ के पीछे भामण्डल का होना, ५—दिव्यध्वनि + का होना, ६—देवों द्वारा फूलों की वर्षा होना, ७—यक्षजाति के देवों द्वारा चौंसठ चमरों का ढुरना और ८—दुन्दुभि बाजों का बजना ये आठ प्रातिहार्य हैं। विशेष शोभा की बातों या चीजों को प्रातिहार्य कहते हैं।

अनन्तचतुष्टयों के नाम—

ज्ञान अनन्त, अनन्तसुख, दरश अनन्त प्रमान।
बल अनन्त अरिहन्त सो, इष्टदेव पहिचान॥

१—अनन्तदर्शन, २—अनन्तज्ञान, ३—अनन्तसुख और ४—अनन्तवीर्य ये चार अनन्तचतुष्टय हैं। इन चारों से भगवान

---

* जिस वृक्ष के नीचे भगवान् को केवलज्ञान होता है वही वृक्ष समवसरण में अशोकवृक्ष कहलाता है। ऐसा ही त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति में कहा है कि—

जेसिं तरुणामूले, उप्पण्णं केवलं णाणं।
उसहप्पहादिजिणाणं तच्चेवासोय रुक्खत्ति॥

× भगवान् सिंहासन से ४ अंगुल अन्तराल विराजमान रहते हैं।

+ तालु, कंठ और ओष्ठ आदि से हिलन चलन और स्पर्श रहित, बिना अक्षर की आर्य और अनार्य सब की समझ में आनेवाली, प्राणियों के पुण्य से बिना इच्छा के प्रतिदिन ४ ४ बार ६ ६ घड़ी निकलने वाली भगवान् की वाणी दिव्यध्वनि कहलाती है। वही उत्तरपुराण में कहा है कि—

मुखाम्बुजेऽस्य वक्तुं विकृतिं नाभूत् मनाग न च।
ताल्वोष्ठाना परिस्पन्दो, निर्ययौ भारती मुखात्॥

का दर्शन, ज्ञान, सुख और बल अनन्त अर्थात् सीमा या हद रहित होता है, इसलिए इन्हें अनन्तचतुष्टय कहते हैं।

अठारह दोषों के नाम—

जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद॥
राग द्वेष अरु मरणजुत, ये अष्टादश दोष।
नहिं होत अरिहन्त के, सो छवि लायक मोष॥

१—जन्म, २—जरा (बुढ़ापा) ३—तृषा (प्यास), ४ क्षुधा (भूख), ५—विस्मय (आश्चर्य), ६—अरति (पीड़ा), ७—खेद (दुःख) ८—रोग, ९—शोक, १०—मद (गर्व) ११—मोह (अज्ञान), १२—भय (डर) १३—निद्रा, १४—चिन्ता, १५—स्वेद (पसीना), १६—राग, १७—द्वेष और १८—मरण ये अठारह दोष हैं। ये अरिहन्त परमेष्ठी के नहीं होते।

सिद्ध परमेष्ठी का लक्षण—

अष्टकर्म और पांच शरीर रहित, लोक और अलोक के ज्ञाता द्रष्टा (जानने देखने वाले), पुरुष के (अन्तिम शरीर से कुछ छोटे) आकार के धारक और लोक के अग्रभाग में स्थित आत्मा को सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं। ये संसार के बन्धन से सदैव को मुक्त हो जाते हैं, फिर कभी लौटकर × संसार में नहीं आते।

× जैसे बीज के बिल्कुल जल जाने पर अंकुर पैदा नहीं होता वैसे ही कर्मरूप बीज के जल जाने पर अर्थात् समस्त कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाने पर संसाररूपी अंकुर पैदा नहीं होता अर्थात् फिर जन्म मरण नहीं होता।

सिद्ध परमेष्ठी के मूलगुण वा उनके लक्षण—

समकित दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघू अवगाहना।
सूक्षम वीरजवान, निराबाध गुण सिद्ध के॥

क्षायिकसम्यक्त्व, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनन्तवीर्य और अव्याबाध ये ८ आठ सिद्ध परमेष्ठी के मूलगुण हैं। इनके भी उत्तरगुण अनन्त हैं।

१—यथार्थ तत्त्वों के विषय में विपरीत अभिप्राय रहित श्रद्धान होना क्षायिकसम्यक्त्व कहलाता है। २—लोक और अलोक के समस्त पदार्थों की सत्ता-मात्र का ग्रहण करना अनन्त दर्शन कहलाता है।

३—त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों को दर्पण के समान युगपत् जानने वाला ज्ञान अनन्तज्ञान कहलाता है। ४—लोहपिण्ड के समान गुरुपने का अभाव तथा आक की रुई के समान लघुपने का अभाव अगुरुलघुत्व गुण कहलाता है।

५—जैसे एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपकों के प्रकाश का समावेश हो जाता है उसी प्रकार एक सिद्ध के क्षेत्र में अनन्त सिद्धों को अवकाश देने की शक्ति अवगाहनत्व गुण कहलाता है।

६—सिद्धों के स्वरूप का इन्द्रियों के गोचर न होना, केवल केवलज्ञान का विषय होना सूक्ष्मत्व गुण कहलाता है। ७—अनन्त पदार्थों के जानने में भी खेद न होना अनन्तवीर्य गुण कहलाता है। ८—और दुःख का सर्वथा अभाव होना अव्याबाध गुण कहलाता है। ये आठ सिद्ध परमेष्ठी के गुण हैं।

सिद्धों में मोहनीयकर्म के अभाव से सम्यक्त्व, ज्ञानावरण कर्म के अभाव से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण कर्म के अभाव से अनन्तदर्शन, अन्तरायकर्म के अभाव से अनन्तवीर्य, नामकर्म के अभाव से सूक्ष्मत्व, आयुकर्म के अभाव से अवगाहनत्व,

गोत्रकर्म के अभाव से अगुरुलघुत्व और वेदनीय के अभाव से अव्याबाधत्व गुण प्रगट होते हैं। अर्थात् आठों कर्मों के नाश होने पर सिद्धों के ये आठ गुण प्राप्त होते हैं।

आचार्य परमेष्ठी का लक्षण—

जो पांच आचारों का स्वयं पालन करते हैं तथा दूसरे मुनियों से पालन कराते हैं और जो मुनियों के संघ के अधिपति होते हैं, उनको दीक्षा या प्रायश्चित्त आदि दण्ड देते हैं उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं आचार्य के मूलगुण ३६ होते हैं।

आचार्य परमेष्ठी के मूलगुणों के नाम—

द्वादश तप दश धर्मजुत, पालें पंचाचार।
षट् आवशि त्रयगुप्ति गुन, आचारज पद सार॥

१२ तप १० धर्म ५ आचार, ६ आवश्यक और ३ गुप्ति ये ३६ आचार्य के मूलगुण हैं। उत्तरगुण इनसे भी अनेक हैं।

तपों के नाम व लक्षण—

अनशन ऊनोदर करे, व्रतसंख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरे, कायक्लेश सुठोर॥
प्रायश्चित धर विनयजुत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचारकै, धरै ध्यान मनलाय॥

अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान से १२ तप हैं।

इच्छाओं का जीतना तप कहलाता है × साधु के २८ मूल गुणों का पालन करना भी आचार्य वा उपाध्याय को आवश्यक है।

१—सर्व प्रकार के भोजन का त्याग कर उपवास करना अनशन कहलाता है। २—भूख से कम खाना या एकासन करना ऊनोदर कहलाता है। ३—भोजन को जाते समय घर या दम्पती कन्या आदि के पड़गाहने का अटपटा नियम लेना व्रतपरिसंख्यानतप कहलाता है। ४—छहों या एक दो आदि रसों का त्याग करना रसपरित्याग कहलाता है। ५—एकान्त स्थान में सोना या बैठना विविक्तशय्यासन कहलाता है।

६—शरीर को वश करने के लिये सर्दी, गर्मी आदि का कष्ट देना कायक्लेश कहलाता है। ७—दोषों का दण्ड लेना प्रायश्चित्त कहलाता है। ८—रत्नत्रय या उसके धारकों का विनय करना विनयतप है। ९—रोगी या वृद्ध मुनि की सेवा करना वैयावृत्य कहलाता है। १०—शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना विचारना और उपदेश स्वाध्याय तप कहलाता है। ११—शरीर से ममता छोड़ना व्युत्सर्ग तप कहलाता है। १२—एकाग्रता से आत्मचिन्तवन करना ध्यान तप कहलाता है।

धर्मों के नाम या उनके लक्षण—

छिमा मारदव आरजव, सत्यवचन चितपाग।
संजम तप त्यागी सरब, आकिंचन तियत्याग॥

अपमानित और दुखित किये जाने पर बदला लेने की शक्ति होने पर भी क्रोध न करना उत्तम-क्षमा कहलाती है। २—मान नहीं करना उत्तम मार्दव कहलाता है। —कपट न करना उत्तम आर्जव कहलाता है। ४—सच बोलना उत्तम सत्य कहलाता है। ५—सन्तोष धारण कर लोभ न करना और मन को पवित्र रखना उत्तम शौच कहलाता है। ६—छह काय के जीवों की दया पालना और पाचों इन्द्रियों वा मन को वश में रखना उत्तम संयम कहलाता है। ७—बारह प्रकार का तप करना उत्तम तप कहलाता है। ८—चार प्रकार का दान देना और राग द्वेष आदि का त्याग

करना उत्तम त्याग कहलाता है। ९—परिग्रह का त्याग करना उत्तम आकिञ्चन कहलाता है। और १०—स्त्रीमात्र का त्याग करना उत्तम ब्रह्मचर्य कहलाता है। ये दश धर्म हैं। जो प्राणियों को संसार के दुःखों से छुड़ा कर उत्तम सुख प्राप्त कराता है वह धर्म कहलाता है।

आचारों तथा गुप्तियों के नाम व लक्षण—

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पञ्चाचार।
गोपे मन वच काय को, गिन छत्तीस गुन सार॥

दर्शनाचार ज्ञानाचार चरित्राचार, तप आचार और वीर्याचार ये ५ आचार (विनय) हैं १—सम्यग्दर्शन के दोष हटाना दर्शनाचार कहलाता है। २—सम्यग्ज्ञान को बढ़ाना और उसके दोष हटाना ज्ञानाचार कहलाता है। ३—सम्यक्चारित्र को निशुद्ध करना चारित्राचार कहलाता है। ४—तप की वृद्धि करना तप आचार कहलाता है। और ५—आत्म-बल का प्रगट करना वीर्याचार कहलाता है।

मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति ये ३ गुप्तियां हैं। १-मन को वश में करना मनोगुप्ति कहलाती है। २—वचन का वश में करना वचनगुप्ति कहलाती है। ३—काय का वश में करना कायगुप्ति कहलाती है।

गुप्ति का लक्षण-विषयाभिलाषा छोड़कर मन, वचन, काय की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का रोकना गुप्ति कहलाती है।

ख्याति, लाभ, पूजा और सत्कार आदि की इच्छा के नहीं होने से सम्यग्ज्ञानपूर्वक होने के अभिप्राय से दश धर्मों के साथ 'उत्तम' विशेषण दिया है।

आवश्यकों के नाम वा लक्षण—

समता धर वंदन करै, नाना थुती बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय॥

समता वन्दना, स्तुति प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग ये ६ आवश्यक हैं। १—समस्त जीवों से समताभाव रखना समता कहलाती है। २—हाथ जोड़कर मस्तक से लगाकर नमस्कार करना वन्दना कहलाता है। ३—पचपरमेष्ठी का गुणगान करना स्तुति कहलाती है। ४—लगे हुए दोषों पर पश्चात्ताप करना प्रतिक्रमण कहलाता है। ५—शास्त्रों का पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है। और ६—खड़े होकर ध्यान लगाना तथा शरीर से ममत्व छोड़ना कायोत्सर्ग कहलाता है। आवश्यक का लक्षण— प्रतिदिन करने योग्य जरूरी कार्यों को आवश्यक कहते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी का लक्षण—

जो मुनि स्वयं पढ़ते हैं तथा शिष्यों को सदा पढ़ाते और धर्मोपदेश देते हैं या ११ अङ्ग और १४ पूर्व के ज्ञानी होते हैं। अथवा जिन दिगम्बर साधुओं में १—वादित्व, २—वाग्मित्व, ३—कवित्व और ४—गमकत्व गुण होते हैं उन्हें उपाध्याय कहते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी के मूलगुण—

चौदह पूरब को धरैं, ग्यारह अङ्ग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ै पढ़ावैं ज्ञान॥

११ अङ्ग और १४ पूर्वों का पढ़ना पढ़ाना ही उपाध्याय के २५ मूलगुण हैं। इनके भी उत्तरगुण अनेक हैं।

१—वादित्व=वाद में जीतने की शक्ति। २—वाग्मित्व= उपदेश देने में चतुरता। ३—कवित्व=कविता करने की चतुरता और ४—गमकत्व=टीका करने की योग्यता।

ग्यारह अङ्गों के नाम—

प्रथमहिं आचाराङ्ग गनि, दूजो सूत्रकृताङ्ग।
ठाण अङ्ग तीजो सुभग, चौथो समवायाङ्ग॥
व्याख्याप्रज्ञप्ति पाँचमों, ज्ञातृकथा षट आन।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तकृत दश ठान॥
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान।
बहुरि प्रश्नव्याकरण जुत, ग्यारह अङ्ग प्रमान॥

१ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञातृकथाङ्ग, ७ उपासकाध्ययनाङ्ग, ८ अन्तकृतदशाङ्ग, ९ अनुत्तरोत्पादकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणाङ्ग और ११ विपाकसूत्राङ्ग ये ११ अङ्ग× हैं।

चौदह पूर्वों के नाम—

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्तिनास्तिपरवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद॥
छट्ठो कर्मप्रवाद है, सत्प्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान॥
विद्यानुवादपूरव दशम, पूर्वकल्याण महन्त।
प्राणवादकिरिया बहुल, लोकबिन्दु है अन्त॥

१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीपूर्व, ३ वीर्यानुवादपूर्व, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ५ ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ कर्मप्रवादपूर्व ७ सत्यप्रवादपूर्व,

---

× अङ्गों की पूर्ण संख्या १२ होती है। १२ वें अङ्ग का नाम 'दृष्टिप्रवाद' है उपाध्यायों को इसका पूर्ण ज्ञान नहीं होता इससे वह यहाँ नहीं गिनाया गया है। १४ पूर्व इसी बारहवें अङ्ग के भेद हैं।

८ आत्मप्रवादपूर्व, ९ प्रत्याख्यानपूर्व, १० विद्यानुवादपूर्व, ११ कल्याणवादपूर्व, १२ प्राणानुवादपूर्व, १३ क्रियाविशालपूर्व और १४ लोकबिन्दुपूर्व ये १४ पूर्व हैं।

साधुपरमेष्ठी का लक्षण

जो पाँचों इन्द्रियों के विषयों की चाह नहीं करते, कुछ भी परिग्रह नहीं रखते आरम्भ नहीं करते, सदा ही ज्ञान ध्यान तप में लीन रहते हैं आत्मस्वरूप या मोक्षमार्ग का साधन करते हैं उन्हें साधुपरमेष्ठी या सुगुरु कहते हैं।

साधुपरमेष्ठी के मूलगुणों के नाम—

पन महाव्रत समिति पन, पचेन्द्रिय का रोध।
षट् आवश्यक साधुगुण, सात शेष अवबोध॥

५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इन्द्रियविजय, ६ आवश्यक और ७ शेष ये २८ साधुपरमेष्ठी के मूलगुण हैं। इनमें से ६ आवश्यकों का वर्णन आचार्यपरमेष्ठी के मूलगुणों में हो चुका है।

महाव्रतों के नाम या लक्षण—

हिंसा अनृत तस्करी, अब्रह्म परिग्रह पाप।
मन वच तन तें त्यागवो, पंच महाव्रत थाप॥

१ अहिंसामहाव्रत, २ सत्यमहाव्रत, ३ अचौर्यमहाव्रत, ४ ब्रह्मचर्यमहाव्रत और ५ परिग्रहत्यागमहाव्रत ये ५ महाव्रत हैं।

मन, वचन, काय से सर्वथा हिंसा का त्याग करना अहिंसा महाव्रत कहलाता है। २ सत्यमहाव्रत का लक्षण—मन, वचन, काय से सर्वथा असत्य का त्याग करना सत्यमहाव्रत कहलाता

साधुओं में ही योग्यतानुसार आचार्य वा उपाध्याय पद होते हैं।

है। ३ अचौर्यमहाव्रत का लक्षण—मन, वचन, काय से सर्वथा चोरी का त्याग करना अचौर्यमहाव्रत कहलाता है। ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत का लक्षण—मन वचन, काय से सर्वथा मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्यमहाव्रत कहलाता है। ५ परिग्रहत्यागमहाव्रत का लक्षण—मन, वचन, काय से सर्वथा २४ परिग्रह का त्याग करना परिग्रहत्यागमहाव्रत कहलाता है।

समितियों के भेद वा लक्षण—

ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापना जुत क्रिया, पांचों समिति विधान॥

१—ईर्या, २—भाषा, ३—एषणा, ४—आदाननिक्षेपण और ५—प्रतिष्ठापना ये ५ समितियाँ हैं। १—ईर्यासमिति का लक्षण—गमन करते समय चार हाथ आगे पृथिवी देखने का ध्यान रखना ईर्यासमिति कहलाती है। २—भाषासमिति का लक्षण—वचन बोलते समय हित और परिमित वचनों का लक्ष्य रखना भाषा समिति कहलाती है। ३—एषणासमिति का लक्षण—आहार के विषय में एकवार निर्दोषता और शुद्धि का विचार रखना एषणासमिति कहलाती है। ४—आदाननिक्षेपणसमिति का लक्षण—अपने शास्त्र, पीछी और कमण्डलु आदि धरते उठाते समय भूमि शोधना आदान निक्षेपणसमिति कहलाती है। ५—प्रतिष्ठापनासमिति का लक्षण मलमूत्र आदि क्षेपण करते समय भूमि की प्रासुकता (जीवरहितता) का लक्ष्य रखना प्रतिष्ठापना समिति कहलाती है।

मन, वचन, काय से सर्वथा पांचों पापों का पूर्ण त्याग करना महाव्रत कहलाता है। गमनादि में जीवघात से बचने के लिये यत्नाचार रखना समिति कहलाती है।

साधु के पांच इन्द्रियविजय और सात शेष मूलगुण—

स्पर्शन रसना नासिका, नयन श्रोत्र का रोध।
शेष सात मज्जनतज्जन, शयन भूमि का शोध॥
वस्त्रत्याग कचलुंच अरु, लघु भोजन इकबार।
दांतुन मुख में ना करें, ठाड़े लेहिं अहार॥

स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-कर्ण इन पांचों इन्द्रियों को वश में करना—इनके इष्ट और अनिष्ट विषयों में राग द्वेष नहीं करना ये पांच 'इन्द्रियविषय' नामक पांच मूलगुण हैं।

१—स्नान का त्याग २—शयन करते समय भूमि का शोधन, ३—वस्त्रत्याग, ४—बालों का लोच करना, ५—भोजन दिन में एक बार वा थोड़ा करना, ६—दातौन नहीं करना और ७—आहार खड़े होकर लेना ये ७ साधुपरमेष्ठी के शेष मूलगुण हैं। उत्तरगुण इनके भी अनेक हैं।

पंचपरमेष्ठी के सम्पूर्ण मूलगुण—

अरिहंता छयालीसा, सिद्धा अट्ठेव सूर छत्तीसा।
उवझाया पणवीसा, साहूण होंति अट्ठवीसा॥

पांचों परमेष्ठियों के क्रमशः ४६+८+३६+२५+२८=१४३ एकसौ तेतालीस मूलगुण होते हैं। उत्तर गुणों का पार नहीं।

प्रकारान्तर से साधु परमेष्ठी के मूलगुण—

पंच महाव्रत आदरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, षट आवशिक आचार॥
भूमिशयन मंजनतजन, वसनत्याग कचलोंच।
एकबार लघुअशन थिति, अशन दंतवन मोंच॥

प्रश्नावली



१—अतिशय, अमुक आचार, अमुक आवश्यक अमुक गुप्ति अमुक चतुष्टय, अमुक तप, अमुक धर्म, अमुक परमेष्ठी, अमुक महाव्रत, अमुक समिति, अमुक सिद्ध गुण, अनंतचतुष्टय, आचार आवश्यक गुप्ति, तप, धर्म, परमेष्ठी, प्रातिहार्य, वज्रऋषभनाराचसंहनन, महाव्रत, मूलगुण, समचतुरस्रसंस्थान और समिति का स्वरूप कहिये ?

२—अणुव्रत और महाव्रत में अरिहन्त और सिद्ध में, आचार्य-उपाध्याय या साधु में अन्तर बतलाइये ?

३—अरिहन्त परमेष्ठी पर उपसर्ग नहीं होता, तो पार्श्वनाथस्वामी पर कमठ ने उपसर्ग कैसे किया ?

४—अरिहन्त भगवान् में या साधारण मनुष्यों में बाहरी बातों में क्या क्या अन्तर होता है ?

५—अतिशय, अरिहंतगुण आचार, आचार्यगुण, आवश्यक, अङ्ग, उपाध्यायगुण, केवलज्ञानातिशय, गुप्ति, घातिया, चतुष्टय, जन्मातिशय, तप, देवकृतातिशय, दोष, द्वादशांग, धर्म, परमेष्ठी, पूर्व, परमेष्ठी के पूज्य मूलगुण, प्रातिहार्य, महाव्रत, मंगलद्रव्य, रस, समिति, साधुगण, सिद्धगुण और संयम के भेद या नाम गिनाइये ?

६—महावीर स्वामी जब पैदा हुये थे तब उनमें अन्य मनुष्यों से कौन कौन असाधारण बातें थीं ?

७—देवकृत अतिशय कब प्रगट होते हैं, केवलज्ञान के पहले या पीछे ?

८—अरिहन्त मुनि हैं या नहीं ? क्या समस्त मुनियों के केवलज्ञान होने पर केवलज्ञान के अतिशय प्रगट होते हैं या केवल अरिहन्तों के ?

९—भगवान की वाणी किस भाषा में खिरती है? उसे सब समझ सकते हैं या नहीं?

१०—दोष किस किस परमेष्ठी में और क्यों नहीं होते हैं?

११—मोक्ष में रहने वाले जीवों को परमेष्ठी कह सकते हैं या नहीं?

१२—उपाध्याय किनको क्या पढ़ाते हैं?

१३—बारहवें अङ्ग का क्या नाम है? पूर्व उससे जुदे हैं क्या?

१४—साधु के गुणों का पालन आचार्य और उपाध्याय करते हैं या नहीं?

१५—आवश्यक, पँचाचार, प्रातिहार्य, महाव्रत, अतिशय, गुप्ति और समिति किसे कहते हैं?

१६—परमेष्ठियों में सब से बड़ा पद किसका होता है?

१७—तुम भी कभी परमेष्ठी हो सकते हो क्या?

१८—साधु परमेष्ठी कौन कौन वस्तु रख सकते हैं?

१९—अरहन्त और सिद्ध में पहिले किसे नमस्कार करना चाहिये और क्या?

२०—मुक्त जानों में कितने कितने और कौन कौन गुण होते हैं? किस कर्म के क्षय से कौन गुण प्रगट होता है?

२१—आचार्य और साधु में पहिले किस पद की प्राप्ति होती है?

२२—उपाध्याय पूर्वो और अङ्गों के पाठी होते या ज्ञानी?

२३—अपराध होने पर मुनिराज क्या करते हैं?

२४—खाने, पीने, नहाने, पहिनने, सोने और चलने आदि कार्यों में हम में और साधु में क्या अन्तर है।

२५—एक परमेष्ठी के गुण दूसरे परमेष्ठी में हो सकते हैं या नहीं? सप्रमाण कहिये।

२६—तुमने किस परमेष्ठी को देखा है?

२७—मूर्तियां कौन परमेष्ठी हैं? और वे किस किस परमेष्ठी की होती हैं?

पाठ तीसरा
सप्तव्यसन का वर्णन

जिन कार्यों के करने से आत्मा भलाई (कल्याण) से विमुख हो जाता है उन्हें व्यसन कहते हैं। अथवा पतन को कारण बुरी (जो पीछे लग जाने पर कठिनाई से छूटती हैं ऐसी) आदत या ज्यादह आसक्ति को व्यसन कहते हैं।

हानि व्यसन सेवन करने वाले व्यसनी कहलाते हैं। इसलोक और परलोक में उन्हें दुःख और अपयश उठाना पड़ता है। दुर्गति की प्राप्ति होती है।

व्यसन के नाम या भेद—

जूआ चोरी मांस मद, वेश्या रमण शिकार।
पर रमणी रति व्यसन ये सातों हैं दुखकार॥

१ जुआ खेलना, २ मांस खाना, ३ मदिरापान करना, ४ शिकार खेलना, ५ वेश्यागमन करना, ६ चोरी करना और ७ परस्त्रीसेवन करना ये सात व्यसन हैं।

जुआ का लक्षण—

हार या जीत के ख्याल से शर्त लगाकर कोई काम करना जुआ खेलना कहलाता है। हानि —जुआ खेलने वाले जुआरी कहलाते हैं। जुआरी का हर जगह अनादर होता है। राजा उसे दण्ड देता है उसका कोई विश्वास नहीं करता। जुआरी को अन्य सब व्यसनों में जबरन फँसना पड़ता है। जुआरी कभी फकीर भी बन जाता है। कभी अपनी स्त्री को भी दाव पर लगा देता है। जुआ से युधिष्ठिर को राज्य से भी हाथ धोना

ड़ा था। कहा भी है कि—

जूआ खेले, मनुष की रहती नेक न *आब।
औरों की गिनती कहा, पाण्डव हुए खराब॥

मांस व्यसन का लक्षण—

जीवों को मार कर अथवा मरे हुए जीवों का कलेवर (शरीर) खाना मांस खाना कहलाता है। हानि —मांस खाने वाले हिंसक और निर्दय कहलाते हैं। मांस में अनन्त जीव होते हैं। इसके काटने और पकाने में घोर हिंसा होती है। इसके खाने से शरीर में अनेक रोग भी हो जाते हैं। संसार में दूध, दही, घी, मिठाई, अन्न, शाक और फल खाने को हैं, फिर भी मूर्ख जन मांस खाते हैं, यह खेद की बात है। मांसभक्षण से बक राजा के समान महान् दुःख होता है। कहा भी है कि—

बक राजा ने मांस खा, खोया राज महान।
मर कर दुर्गत को गया, हुआ यहां अपमान॥

मदिरापान व्यसन का लक्षण—

भांग, गांजा, शराब, अफीम, कोकीन, तमाखू और चरस इत्यादि मादक पदार्थों का सेवन करना मदिरापान कहलाता है। हानि —इनका सेवन करने वाला शराबी और नशेबाज कहलाता है। उसका धर्म, कर्म, विवेक और ज्ञान नष्ट हो जाता है। काम, क्रोध, बेहोशी आदि उत्पन्न हो जाते हैं। उसके मुख में कुत्ते भी मूत जाते हैं महान् हिंसा का पाप लगता है। तथा एक पादि संन्यासी के समान दुर्गति होती है। कहा है कि—

मदिरा पी भया मलिन, लोटें बीच बजार।
मुख में मूतें कूकरा, चाटें बिना विचार॥

---

*आब = इज्जत या आदर।

'एकपाद' साधू यहां, कर कर मदिरापान।
चाण्डालों के हाथ से, खो बैठा निज ज्ञान॥

शिकार व्यसन का लक्षण—

जंगल में स्वतन्त्र फिरने वाले सिंह, बाघ, सुअर और हरिण वगैरह जानवरों को तथा आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को या किसी भी प्राणी को मांसाहार या शौक के लिये बन्दूक आदि हथियारों से मारना शिकार खेलना कहलाता है। हानि— शिकार खेलने वाले शिकारी, निर्दय और हत्यारे कहलाते हैं। उनके परिणाम बहुत ही क्रूर हो जाते हैं। उनके हाथ में हथियार देखते ही प्राणी डर जाते हैं। वे पापी और पर जान को अपने समान न समझ भैरव शिकारी के समान कभी अपने प्राण भी गमा देते हैं। कहा भी है कि—

जैसे अपने प्राण हैं, वैसे पर के जान।
कैसे हरते दुष्ट जन, बिना वैर पर प्रान॥
भैरव ने मारा हरिण, कमा सुअर पर बान।
जीता ही शूकर बचा, ली भैरव की जान॥

वेश्यागमन व्यसन का लक्षण—

वेश्या से रमण करने की इच्छा करना, उसके घर आना जाना, उससे सम्बन्ध रखना वेश्यागमन कहलाता है। हानि— वेश्यागामी लुच्चा, बदमाश और व्यभिचारी कहलाता है। वेश्यागमन से अनेक प्रकार के असाध्य रोग हो जाते हैं। शरीर और धन क्षीण हो जाता है। हिंसा का पाप लगता है। जगत में निन्दा होती है। बुद्धि बिगड़ जाती है। तथा चारुदत्त के समान दुर्दशा होती है। कहा भी है कि—

चारुदत्त की चतुरता, 'तिलका' ने की दूर।
पूरा उसका धन हड़प, दिया नालि में पूर॥
द्विज सत्री बोली वनिक, गनिका चाहत लाल।
तासों सेवत मूढ़ जन, मानत जनम निहाल॥

चोरी व्यसन का लक्षण—

किसी की गिरी हुई, भूली हुई या रखी हुई वस्तु छिपाने की नियत से ले लेना या लेकर किसी दूसरे को दे देना चोरी कहलाती है। हानि—चोरी करने वाले को चोर कहते हैं। उसका कोई विश्वास नहीं करता है। राजा दण्ड देता है। धन प्राणों से भी प्यारा होता है, इसलिये धन हरने वाले को प्राण हरने का पाप लगता है। चोर की अपसर नामक चोर साधु के समान दुर्दशा होती है। कहा भी है कि—

अपमर साधु होय कर, चोरी कर मतिहीन।
राजदण्ड को भोग कर, मरा लही गति हीन॥

परस्त्रीसेवन व्यसन का लक्षण—

धर्मानुकूल अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय दूसरी स्त्रियों के साथ रमण करना परस्त्रीसेवन कहलाता है। हानि—अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ अन्य स्त्रियाँ मा, बहिन और लड़की के समान हैं। इसलिये परस्त्रीसेवन करने वाले को मा, बहिन व बेटी के साथ विषय सेवन करने का पाप लगता है। समाज व राजा दण्ड देता है। असाध्य रोग हो जाते हैं। शरीर व धन क्षीण हो जाता है। हिंसा का पाप लगता है। गौरव जाता रहता है। और रावण के समान लोकनिन्दा होती है। कहा भी है कि—

ना सेई नारी हुई, रावन पाई घात।
चली आत निन्दा अजों, जग में भई विख्यात॥

जुआ व्यसन की प्रधानता—

किसी मनुष्य को कुसङ्गति के कारण जुआ खेलने का चस्का (व्यसन) लग गया। जब वह अपना सारा धन जुए में हार गया तब उसे जुआ के लिये धन की आवश्यकता हुई इससे वह चोरी कर जुआ खेलने लगा।

चोरी में निपुण हो जाने पर जुआ खेलने के बाद भी उसके पास धन बचने लगा। एक दिन वह वेश्या के द्वार के सामने से जा रहा था कि उसके एक जुआरी मित्र ने आवाज देकर उसे वहाँ बुलाया। उसे देखकर वेश्या ने अपने हाव भाव या कटाक्षों से उसे अपने पर अनुरक्त कर लिया। तब वह वेश्या सेवन करने लगा और चोरी द्वारा बहुत धन लाकर वेश्या को देने लगा।

वेश्यासेवन में आनन्द की वृद्धि के लिये वेश्या ने मदिरा पान का चस्का भी उसे लगा दिया। तब वह दिनरात मदिरा के नशे में चूर रहने लगा।

मदिरा के नशे में उसे खाद्य और अखाद्य का विचार भी नहीं रहा और वह वेश्या के साथ मांस आदि अखाद्य वस्तुएं भी खाने लगा।

मांसभक्षण की आदत पड़ जाने से मांसप्राप्ति के लिये वह जंगल आदि में पशु पक्षियों का शिकार करने लगा। जिस से वह क्रूरपरिणामी हो गया।

क्रूरपरिणामी हो जाने और नशे में चूर रहने के कारण वह परस्त्रियों के साथ बलात्कार भी करने लगा। तथा बलपूर्वक उनका सतीत्वहरण कर अधिक व्यभिचारी और लोक निन्द्य हो गया।

इस प्रकार एक जुआ व्यसन के लग जाने से वह क्रमशः सातों व्यसनों का सेवन करने वाला, अति पापी भ्रष्ट और

दुर्गति का पात्र बन गया। इसलिये जुआ सबसे बुरा व्यसन है। इसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। ये व्यसन बड़े ही दुःख दायी हैं। व्यसन का अर्थ ही दुःख है। इसलिये इनसे सदा दूर रहना चाहिये।

प्रश्नावली—

१—चोरी व्यसन, जुआ व्यसन, परस्त्रीव्यसन, वेश्या व्यसन, मदिरापानव्यसन, मांस व्यसन शिकारव्यसन का लक्षण या प्रत्येक व्यसन के सेवन में हानि बतलाइये ?

२—व्यसन के भेद या नाम गिनाइये ?

३—परस्त्री और वेश्या में क्या अन्तर है ?

४—सबसे बुरा व्यसन कौनसा है और क्या ?

५—सबसे अच्छा व्यसन कौनसा है ?

६—परस्त्री सेवन से मां बहिन बेटी के सेवन का पाप क्यों लगता है ?

७—परस्त्री का त्यागी वेश्या का त्यागी है या नहीं ?

८—ऐसे कौन व्यसन हैं जिनके सेवन में हिंसा होती है ?

९—वसन्त तिलका वेश्या के एक ही भव में १८ नाते कैसे हुए ?

१०—भांग बीड़ी, चिलम पीना मदिरापान है या नहीं ?

११—ताश, शतरंज, सट्टा, लाटरी, जीवनबीमा, कबड्डी, जुआ है या नहीं ?

१२—किस किस व्यसन से किस किस ने दुःख पाया है ? किसी एक की कथा सुनाओ ?

१३—ग्यारहवां प्राण कौन है और क्यों ?

१४—अमुक श्लोक पूरा कीजिये ?

१५—दूसरों की रक्षा के लिये हिंसक पशुओं या जीवों को मारना अच्छा है या बुरा ? कारणसहित बतलाइये ?

पाठ चौथा
श्रावक के अष्टमूलगुणों का वर्णन



मूलगुण का लक्षण—

श्रावक के सबसे पहिले मुख्य नियमों को मूलगुण कहते हैं। कोई भी व्यक्ति जब तक इन मूलगुणों को धारण नहीं करता, तब तक श्रावक नहीं कहला सकता। इसलिये श्रावक बनने के लिये मूलगुणों का धारण करना आवश्यक है। मूल का अर्थ 'जड़' है जैसे जड़ के बिना पेड़ नहीं ठहर सकता उसी प्रकार कुछ नियम ऐसे हैं जिनका पहिले पालन किये बिना प्राणी श्रावक नहीं कहला सकता इन नियमों को ही मूलगुण कहते हैं।

श्रावक के मूलगुणों के भेद—

(१) मद्यत्याग, (२) मांसत्याग, (३) मधुत्याग, (४) बड़त्याग, (५) पीपलत्याग, (६) पाकरत्याग, (७) कठूमरत्याग तथा (८) गूलरत्याग इस प्रकार तीन मकार* का त्याग और पांच उदुम्बर फलों का त्याग ये श्रावक के आठ मूलगुण हैं।

मद्यत्याग मूलगुण का लक्षण—

शराब, भंग, गांजा, अफीम, चरस, तम्बाखू, बीड़ी और चुरुट आदि नशीली वस्तुओं के सेवन का त्याग करना मद्यत्याग मूलगुण कहलाता है। महुआ, खराबगुड़ (राब), ताड़ का रस आदि पदार्थों को मिला और सड़ा कर (शराब) बनाई जाती है।

---

* मद्य, मांस और मधु को मकार इसलिये कहते हैं कि इनका पहिला अक्षर 'म' है।

हानि—वस्तुओं के सड़ने से मद्य में हर समय सूक्ष्म त्रसजीव पैदा होते और मरते रहते हैं। जीवहिंसा के बिना शराब किसी प्रकार तैयार ही नहीं हो सकती। इसलिये शराब पीने से जीव हिंसा का पाप लगता है। शराब पीने से मनुष्य पागल सा हो जाता है। उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। कभी कभी शराबी के मुख में कुत्ते पेशाब कर जाते हैं। इसी प्रकार भांग, अफीम और तम्बाकू वगैरह वस्तुएँ भी स्वास्थ्य और विवेक को बिगाड़ती हैं इसलिये इनका त्याग करना ही उचित है।

मांसत्याग मूलगुण का लक्षण—

मांस खाने का त्याग करना मांसत्याग मूलगुण कहलाता है। त्रस जीवों के मृत शरीर को मांस कहते हैं।

हानि—मांस में हर समय अनेक सूक्ष्म त्रसजीव पैदा होते और मरते रहते हैं। मांस को छूने से हजारों जीव मर जाते हैं। इससे मांसभक्षी अनेक जीवों की हिंसा करता है। मांस भक्षण से अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। स्वभाव क्रूर हो जाता है। इसलिये मांस खाने का त्याग करना ही उचित है।

मधुत्याग मूलगुण का लक्षण—

शहद खाने का त्याग करना मधुत्याग कहलाता है। हानि—शहद मधुमक्खियों का वमन (कय या उगाल) है। बहुत से लोग मक्खियों के छत्ते को निचोड़ कर शहद निकालते हैं। छत्ते में छोटी छोटी मक्खियां रहती हैं। छत्ते को निचोड़ने से वे सब मर जाती हैं और उन सबका रस शहद में आ जाता है। मधु में हर समय अनेक सूक्ष्म त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। ऐसी अपवित्र, हिंसा की खानि और घृणाकारक मधु के खाने का त्याग करना ही उचित है।

पाच उदुम्बरत्याग मूलगुण—

बड़ फल, पीपल फल, पाकर फल, गूलर फल और कठूमर फल इन फलो के खाने का त्याग करना पाच उदुम्बरों का त्याग करना कहलाता है।

हानि—इन फलों में छोटे छोटे अनेक त्रसजीव रहते हैं। वे जीव अनेकों में तो साफ साफ दिखाइ देते हैं और अनेकों में छोटे होने से दिखाइ नहीं देते। तो भी उनकी पैदायश का ये स्थान है। इन फलो के खाने से ये सब जीव मर जाते हैं। इस लिये इन फलों के खाने का त्याग ही उचित है।

नोट—किन्हीं आचार्यों ने मद्य, मास, मधु और पाच पापों के त्याग को भी अष्टमूलगुण कहा है। इसके अतिरिक्त इन मूल गुणो के विषय में और भी कई मत हैं। जिनका विवरण हमारे 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' ग्रन्थ के श्लोक न० ६६ से जानना।

प्रश्नावली—

१—मद्य, मधु मास वा मूलगुण का लक्षण कहिये ?

२—मद्य, मधु वा मास के खाने से क्या हानि है ?

३—मद्य, मधु वा मास कैसे बनता है ?

४—ये आठ मूलगुण किसके होते हैं ?

५—उदुम्बर, मकार वा मूलगुणों के भेद बतलाइये ?

६—क्या सभी फलो के खाने मे दोष है या केवल बड़, पीपल आदि के ही खाने में ? कारण-सहित बतलाइये।

७—मास का त्यागी मद्य सेवन कर सका या नहीं ?

८—सर्वथा जीवहिंसा का त्यागी मूलगुणधारी है या नहीं ?

९—मूलगुणों का धारी व्यसनसेवन करेगा या नहीं ?

पाठ पांचवां
अभक्ष्य का वर्णन



अभक्ष्य का लक्षण—

जो पदार्थ खाने (भक्षण करने) योग्य नहीं होते उन्हें अभक्ष्य कहते हैं।

अभक्ष्य के भेद—

१—त्रसहिंसाकारक, २—बहुस्थावर-हिंसाकारक, ३—प्रमादकारक, ४—अनिष्ट और ५—अनुपसेव्य ये अभक्ष्य के भेद हैं।

त्रसहिंसाकारक अभक्ष्य का लक्षण—

जिन पदार्थों के खाने से त्रसजीवों का घात होता है उन्हें त्रसहिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे—बड़, पीपल, ऊमर, मुलैठी, बेर, कमल की डंडी के समान पोले पदार्थ, बीधा (घुना) अन्न, अमर्यादित वस्तु, मुरब्बा और ‡ द्विदल आदि के खाने से त्रसजीवों का घात होता है।

स्थावरहिंसाकारक अभक्ष्य का लक्षण—

जिन पदार्थों के खाने में अनन्तस्थावर जीवों का घात होता है उन्हें स्थावरहिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे—आलू, घुइयां, मूली, गाजर, लहसुन, अदरक, शकरकन्दी, सूरण,

---

‡ दलने पर जिनके प्राय बराबर बराबर दो टुकड़े होते हैं ऐसे उड़द, मूंग, चना आदि को कच्चे दूध, कच्चे दही और कच्चे दूध से जमाये गये छाछ में मिला कर खाना द्विदल कहलाता है। इसमें मुख की लार मिलते ही त्रसजीव पैदा हो जाते हैं।

प्रश्नावली



१—अज्ञानफल, अनिष्ट, अनुपसेव्य, अभक्ष्य, कन्दमूल, चलितरस, तुच्छफल, त्रस हिंसाकारक, द्विदल, प्रमाद कारक, बहुबीजक या विष का लक्षण कहिये।

२—अभक्ष्य का त्यागी मूलगुण का धारी है या नहीं?

३—दूध, दही या छाछ न मिलाने पर मूंग, उड़द वगैरह द्विदल कहलावेंगे या नहीं?

४—त्रस और स्थावरों की हिंसा किन अभक्ष्य पदार्थों के खाने में होती है।

५—सम्पूर्ण शाक पात का त्यागी किन्तु अन्य चीजों का खाने वाला अभक्ष्य का त्यागी है या नहीं?

६—अभक्ष्य के भेद या नाम बतलाइए।

७—कौन कौन से पदार्थ क्या क्या मिलाने से द्विदल हो जाते हैं।

८—पेड़ा, टमाटर, गोभी का फूल, बेर, घी, बदाम का रायता, अप्रासुक दूध, नीबू का अचार, आलू, कमलगट्टा, खीरा, मूली मक्खन, शहद और दहीबड़ा इनमें अभक्ष्य कौन कौन हैं?

९—अनिष्ट और अनुपसेव्य में क्या अन्तर है? प्रत्येक के दो दो उदाहरण भी बताइये?

१०—क्या सभी शाकपात अभक्ष्य हैं?

पाठ छटवाँ
श्रावक के व्रतों का वर्णन



व्रत का लक्षण—

सेवन करने योग्य विषयों का कुछ दिनों की मर्यादा लेकर प्रतिज्ञापूर्वक त्याग करना या हिंसा आदि खोटे कार्यों का संकल्पपूर्वक बिलकुल त्याग करना और अच्छे कार्यों के करने का नियम लेना व्रत कहलाता है।

व्रत के भेद—

पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, चौ शिक्षाव्रत शास्त्रविधान।
धन कर श्रावक व्रत बारह, भेद बताओ तुम बुधिमान॥

५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत ये १२ व्रत के भेद हैं। इन्हें श्रावक के उत्तरगुण भी कहते हैं। ये मूलगुणों के बाद पाले जाते हैं अथवा मूलगुणों की अपेक्षा उत्तम हैं इस लिये इन्हें उत्तरगुण कहते हैं। इनका पालने वाला श्रावक 'व्रती या व्रतप्रतिमाधारी' कहलाता है।

अणुव्रत का लक्षण—

जिन्हें सर्वसाधारण (जैनेतर) जन भी हिंसा, झूठ आदि कहते हैं उन हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह के कुछ अंश के त्याग को अणुव्रत कहते हैं। श्रावक के ये व्रत महाव्रतों की अपेक्षा लघु (छोटे) होते हैं इसलिये इन्हें अणुव्रत कहते हैं।

अणुव्रत के भेद—

१ अहिंसाणुव्रत, २ सत्याणुव्रत, ३ अचौर्याणुव्रत, ४ ब्रह्मचर्याणुव्रत और ५ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत ये पांच अणुव्रत के भेद हैं। किन्हीं आचार्यों ने रात्रिभोजनत्याग नामक छटवां अणुव्रत भी माना है।

अहिंसाणुव्रत का लक्षण—

त्रस जीवों का सङ्कल्पी (इरादा पूर्वक) हिंसा का
करना अहिंसाणुव्रत कहलाता है। अहिंसाणुव्रती 'मैं इस
को मारूं" ऐसे सङ्कल्प (इरादा) [redacted] कभी किसी का घा
करता, न वचन द्वारा किसी से कहता है कि तुम इसे मारो
न कभी किसी जीव के मारने का विचार करता है।" म
मकान, व्यापार करने और शत्रु से अपने को बचाने में जो
होती है उसका त्यागी गृहस्थ नहीं होता। तो भी यत्नाचा
दया का भाव रखता है। वह स्थावर जीवों की भी व्यर्थ
नहीं करता।

सत्याणुव्रत का लक्षण—

स्थूल झूठ बोलने का त्याग करना सत्याणुव्रत क
है। अर्थात् स्थूल (मोटा) झूठ न तो आप बोलना और न
से बुलवाना और ऐसा सच भी नहीं बोलना जिसके बो
किसी जीव या धर्म का घात हो जाय, उसे सत्याणुव्रत क

अचौर्याणुव्रत का लक्षण—

प्रमाद या लोभ के वश होकर किसी की गिरी, पड़
या भूली हुई वस्तु बिना दिये स्वयं नहीं लेना और उ
किसी दूसरे को भी नहीं देना अचौर्याणुव्रत कहलाता है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत का लक्षण—

परस्त्री या परपुरुष के साथ रमण, बुरी निगाह, ब
तथा गन्दा वार्तालाप या व्यवहार करने का त्याग करने

* राज्य का कर नहीं चुराना, कमबढ़ तौलना, दूध म
घी में तैल मिलाना, झूठ विज्ञापन देना, माल का नमू

उन पर बहिन या माइ के समान दृष्टि रखना ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता है।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत का लक्षण—

खेत, मकान, रुपया, पैसा, सोना, चाँदी, पशु, अनाज, दासीदास, वस्त्र और बर्तन वगैरह वस्तुओं का अपनी इच्छा और निवाह के अनुसार परिमाण कर लेना कि मैं जन्म भर के लिये इतनी रखूँगा बाकी सब का त्याग कर देना परिग्रह—परिमाणाणुव्रत कहलाता है।

शिक्षाव्रत का लक्षण व भेद—

अणुव्रतों में गुण लाने वाले अर्थात् अणुव्रतों के पालन में उपकार करने वाले व्रतों को गुणव्रत कहते हैं। १—दिग्व्रत, २ देशव्रत और ३ अनर्थदण्डव्रत ये ३ गुणव्रत के भेद हैं।

दिग्व्रत का लक्षण—

लोभ का आरम्भ घटाने के लिये दशों दिशाओं में आने जाने की मर्यादा जीवन भर के लिये कर लेना दिग्व्रत कहलाता है। इसव्रत का धारी इस प्रकार नियम करता है कि—मैं अमुक दिशा में अमुक पर्वत, नदी या नगर से आगे जीवनपर्यन्त नहीं जाऊँगा। जैसे—किसी मनुष्य ने पूर्व में ब्रह्मदेश, पश्चिम में सिन्धनदी, उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण में कन्याकुमारी से आगे जीवन भर नहीं जाने का नियम ले लिया तो यह नियम दिग्व्रत कहलावेगा। धर्मकार्य के लिये मर्यादा नहीं की जाती है।

देशव्रत का लक्षण—

दिग्व्रत में जीवनपर्यन्त की की गई आने जाने के क्षेत्र की मर्यादा घड़ी, घण्टा, दिन, पक्ष, महिना वगैरह नियत समय तक घटाना देशव्रत कहलाता है। जैसे—किसी ने दिग्व्रत लेकर

पूर्वदिशा में जीवन भर ब्रह्मदेश से आगे नहीं जाने का नियम लिया था, अब वह नियम करता है कि मैं अठाइ पर्व म शिखर जी से आगे न जाऊँगा। फिर किसी और दिन वह नियम करता है कि आज मैं अपने ग्राम से बाहर न जाऊँगा, तो इसका यह नियम देशव्रत समझना चाहिये।

अनर्थदण्डव्रत का लक्षण—

बिना प्रयोजन ही जिन कार्यों में पाप का आरम्भ होता है उन कार्यों का त्याग करना अनर्थदण्डव्रत कहलाता है। इस व्रत का धारी कभी किसी को हिंसा वगैरह पाप का उपदेश नहीं देता, किसी को जहर हथियार वगैरह हिंसा के उपकरणों का मांगे नहीं देता, किसी का बुरा नहीं विचारता, कषाय उत्पन्न करने वाली कथाएँ नहीं सुनता और बेमतलब पानी डालना, वनस्पति छेदना व जमीन खोदना वगैरह कार्य व्यर्थ नहीं करता।

गुणव्रत का लक्षण वा भेद—

जिन व्रतों के पालन से मुनिव्रत के अभ्यास की शिक्षा मिलती है, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं। उसके सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाण और अतिथिसंविभाग ये ४ भेद हैं।

सामायिक शिक्षाव्रत का लक्षण —

निश्चित समय तक मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से पाँचों पापों का त्याग करना तथा सबसे राग द्वेष छोड़ कर शुद्ध आत्मा का अनुभव करना सामायिक शिक्षाव्रत कहलाता है। सामायिक की विधि इसी पुस्तक म अलग देखिये।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का लक्षण—

प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को समस्त आरम्भ या विषय कषाय तथा सब प्रकार के आहार का त्याग कर १६ पहर

तर धर्मध्यान करना प्रोषधोपवास कहलाता है। दिन भर में एकबार भोजन करना प्रोषध (एकाशन) कहलाता है। सर्वथा भोजन नहीं करना उपवास (अनशन) कहलाता है। दो प्रोषधों के बीच एक उपवास करना प्रोषधोपवास कहलाता है।

प्रोषधोपवास का दृष्टान्त और विधि—

जैसे किसी मनुष्य को अष्टमी का प्रोषधोपवास करना है तो वह सप्तमी और नवमी को एकबार भोजन करे तथा अष्टमी को भोजन का सर्वथा त्याग करे। इस समय पाँचों पाप, व्यापार, गृहकार्य, शृङ्गार, स्नान, तेल, अंजन, मंजन, मैथुन, रेल और यात्रा का सर्वथा त्याग करे। अपना १६ पहर का समय पूजन, स्वाध्याय, सामायिक तथा धर्मचर्चा ही में व्यतीत करे। यह उत्तम प्रोषधोपवास की विधि है। मध्यम प्रोषधोपवास १२ पहर का और जघन्य ८ पहर का होता है। इस व्रत के समय यदि कषाय और विषयसेवन की कमी न की गई तो इस व्रत से कुछ लाभ नहीं होता।

भोगोपभोगपरिमाणशिक्षाव्रत का लक्षण* —

भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि भोगोपभोग की वस्तुओं का परिमाण कर बाकी सबका जीवनपर्यन्त अथवा कुछ नियमित काल तक त्याग करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत कहलाता है। इस व्रत में अभक्ष्य वस्तुओं का तो जीवनपर्यंत के लिये त्याग

* जो वस्तु एकबार ही भोगने योग्य होती है वह भोग कहलाती है। जैसे—रोटी, फूलमाला, पान इत्यादि। जो वस्तु बारबार काम में आ सकती [redacted] वह उपभोग कहलाती है। जैसे—वस्त्र, मकान, सवारी आदि। जीवन पर्यंत के लिये जो त्याग किया जाता है वह 'यम' कहलाता है और परिमित समय के लिये जो त्याग किया जाता है वह त्याग 'नियम' कहलाता है।

किया जाता है और भक्ष्य वस्तुओं का घड़ी, घंटा, दिन, महिना, वर्ष वगैरह काल की मर्यादा लेकर या जीवनपर्यन्त के लिये त्याग किया जाता है।

इस व्रत के धारी को भोजन, वाहन, शयन आदि १७ कार्यों का नियम प्रतिदिन प्रातः ही अवश्य करना चाहिये। जैसे आज भोजन इतने बार करूँगा, रस इतने खाऊँगा आदि।

अतिथिसंविभागशिक्षाव्रत का लक्षण—

फल की इच्छा के बिना भक्ति और आदर पूर्वक धर्म बुद्धि से मुनि, त्यागी तथा अन्य धर्मात्मा जनों को यथायोग्य दान देना +अतिथिसंविभागशिक्षाव्रत कहलाता है। अतिथि संविभागव्रत के ४ भेद हैं—आहारदान, ज्ञानदान, औषधिदान और अभयदान।

१—आहारदान का लक्षण—मुनि, त्यागी, व्रती, श्रावक तथा भूखे अनाथ-विधवा-गरीब आदि को भोजन देना 'आहार दान' कहलाता है।

२—ज्ञानदान का लक्षण—पढ़ाना, व्याख्यान देना, पाठ शाला खोलना, वाचनालय खोलना और पुस्तकें छपाना वा बाटना आदि ज्ञानदान कहलाता है।

३—रोगियों को औषधि देना, उनकी परिचर्या करना तथा औषधालय खुलवाना आदि औषधिदान कहलाता है।

४—मठ या धर्मशाला बनवाना, सड़क पर लेम्प लगवाना, चौकी पहरा लगवाना, औरों का दुख व संकट दूर करना तथा जीवों की रक्षा करना आदि अभयदान कहलाता है।

+जो भिक्षा के लिये बिना किसी तिथि का निश्चय किये भ्रमण करते हैं उन्हें 'अतिथि' कहते हैं। अपने कुटुम्ब के लिये बनाये हुए भोजन में से भाग करके देना 'संविभाग' कहलाता है

प्रश्नावली

१—अणुव्रत, अमुक्दान, अमुक्मन, उपभोग, उपवास, गुणव्रत, नियम, प्रोषध, भोग, यम और शिक्षाव्रत का लक्षण उदाहरण सहित बतलाइये ?

२—अणुव्रत गुणव्रत, दान व्रत और शिक्षाव्रत के भेद गिनाइये ?

३—अणुव्रत और महाव्रत में, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत व भोगोपभोगपरिमाणव्रत में, प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास में दिग्व्रत और देशव्रत में, नियम और यम में अन्तर उदाहरण सहित बतलाइये ?

४—अहिंसाणुव्रती युद्ध और सेवा करेगा या नहीं ? मन्दिर, कुआ और तालाब बनवावेगा या नहीं ?

५—एक दुष्टा स्त्री कटुशब्दों से सदा अपने स्वामी का दिल दुखाती है तो वह कौनसा पाप करती है ?

६—मिथ्यात्व का नाश और ज्ञान का प्रचार करने के लिये अकलंक ने आपत्ति आने पर झूठ बोल कर अपने प्राणों की रक्षा की तो उन्हें झूठ का पाप लगा या नहीं ?

७—अपराधी को निश्चित फांसी से बचाने के लिये झूठी गवाही दे देना अच्छा है या बुरा ?

८—स्त्री के पास रुपया होने पर भी पति के द्वारा जुए को रुपया मांगे जाने पर 'मेरे पास नहीं हैं' ऐसा कह देना पाप है या नहीं ? क्यों ?

९—सड़क पर पड़ा हुआ रुपया उठा कर भिखारी को दे देना पाप है या नहीं ?

१०—पञ्चाणुव्रतों का पालक कौन प्रतिमाधारी है ?

११—बिना अणुव्रत पालन किये गुणव्रत और शिक्षाव्रत हो सकते हैं या नहीं ? क्यों ?

१२—शिक्षाव्रत का पालक

पाठ सातवाँ

एकादश-प्रतिमा का वर्णन



प्रतिमा का लक्षण—

श्रावक के आचरण के ग्यारह दरजों (कक्षाओं, श्रेणियों) को प्रतिमा कहते हैं। अथवा भोगों से राग घटाना, संयम का बढ़ाना और कर्त्तव्यपालन की प्रतिज्ञायें करना प्रतिमा कहलाता है। कविवर प० बनारसीदास जी ने कहा भी है कि—

संयम अंश जग्यो जहाँ, भोग अरुचि परिणाम।
उदय प्रतिज्ञा को भयो, प्रतिमा ताको नाम॥

पृष्ठ ५२ की प्रश्नावली का शेषभाग—

अणुव्रती है या नहीं ?

१३—एशिया, यूरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया और आफ्रीका से बाहर न जाने का नियम कर लेना दिग्व्रत है या नहीं ? क्यों ?

१४—जिनमें युद्ध और जीवहिंसा का कथन है उसी पुस्तक अनर्थदण्डव्रतधारी पढ़ेगा और सुनेगा या नहीं, क्यों ?

१५—सामायिक कब, कहाँ या कैसे करना चाहिये और उस समय क्या विचार करना चाहिये ?

१६—प्रोषधोपवास के दिन क्या करना चाहिये ?

१७—छपी पुस्तकें बाँटना, अंग्रेजी और शिल्पशिक्षा के लिये छात्रवृत्ति देना ज्ञानदान है या नहीं ?

१८—एक पण्डित जी बिना कुछ लिये दिये पढ़ाते हैं तो उनके कौनसा व्रत हुआ ?

प्रतिमा के भेद या नाम—

दर्शन, व्रत सामायिक प्रोषध, शुचि सचित्त रात्रि परिहार।
ब्रह्मचर्य आरम्भत्याग वा नवम परिग्रह त्याग विचार॥
अनुमतित्याग उद्दिष्टत्याग कहि, प्रतिमा ग्यारह श्रीगणधार।
अगली प्रतिमा में पूरब की, छुटी रहे ना होय विचार॥

नोट—श्रावक अपने संयम की उन्नति करता हुआ पहिली से दूसरी, दूसरी से तीसरी और तीसरी से चौथी इस प्रकार ग्यारहवीं × प्रतिमा तक चढ़ता है। इससे ऊपर चढ़ कर साधु अर्थात् मुनि हो जाता है। अगली अगली प्रतिमाओं में पहिले की प्रतिमाओं की क्रिया का पालना भी जरूरी है।

दर्शनप्रतिमा का लक्षण—

अष्ट मूलगुण संग्रह करै, व्यसन अभक्ष्य सबै परिहरै।
युत अष्टांग शुद्ध सम्यक्त्व, धरहिं प्रतिज्ञा दर्शनरक्त॥१॥

निर्मल सम्यग्दर्शन सहित निरतिचार आठ मूलगुणों का पालन करना, सात व्यसनों का अतिचारसहित त्याग करना और अहिंसा आदि पाँच अणुव्रतों का अभ्यासमात्र करना 'दर्शन—प्रतिमा' कहलाती है। इस प्रतिमा का धारक 'दार्शनिक श्रावक' कहलाता है। वह सदा संसार, शरीर व भोगों से उदा

× प्रतिमा शब्द से यहाँ जिनमन्दिर में विराजमान अरिहन्त आदि की मूर्ति नहीं लेना किन्तु श्रावक के नियम या व्रतपालन की भिन्न भिन्न अवस्था या कक्षा समझना चाहिये।

कोई कोई श्रावक ऐसे भी होते हैं कि जो व्रतप्रतिमा धारण कर गृह छोड़ विचरते हुए धर्मसाधन में तत्पर रहते हैं वे व्रत प्रतिमाधारी गृहत्यागी कहलाते हैं।

लीन, दृढ़ निश्चय (श्रद्धान) वाला और सांसारिकफल की इच्छारहित होता है। तथा अपने सम्यक्त्व में दोष नहीं लगाता।

व्रतप्रतिमा का लक्षण—

अणुव्रत पन अतिचार विहीन, धारहिं जो पुन गुणव्रत तीन।
चौ शिक्षाव्रत सजुत सोय, व्रतप्रतिमाधर श्रावक होय ॥२॥

पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन १२ व्रतों का पालन करना व्रतप्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी व्रती श्रावक कहलाता है। इस प्रतिमा में अतिचार केवल अणुव्रतों के ही टलते हैं। शेष सात व्रतों का अभ्यास-मात्र होता है।

सामायिकप्रतिमा का लक्षण—

सब जीव में समभाव धर, शुभभावना संयम सही।
दुर्ध्यान आरत रौद्र तज कर, त्रिविध काल प्रमानही॥
परमेष्ठि पन जिन वचन जिनवृष, बिंवजिन जिनगृह तनी।
वन्दन त्रिकाल करें सुजानहु, सत्य सामायिक धनी ॥३॥

प्रतिदिन सवेरे, दोपहर और शाम को कम से कम दो दो घड़ी विधिपूर्वक अतिचार रहित सामायिक करना सामायिक प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी किसी भी प्रकार के उपसर्ग या परीषह के आजाने पर सामायिक से च्युत नहीं होता। इस प्रतिमा का धारी 'सामायिकी' कहलाता है।

प्रोषधप्रतिमा का लक्षण—

वर मध्यम जघन त्रिविध धरेय, प्रोषधविधियुत निजबलप्रमेय।
प्रतिमास चार पर्वी मँझार, जानहु सो प्रोषध नियमधार ॥४

प्रत्येक अष्टमी वा चतुर्दशी को अतिचार रहित प्रोषधोपवास करना और इस दिन व्यापार, आरम्भ, भोजन, स्नान आदि भोगोपभोग की सामग्री का त्याग कर एकान्त में स्वाध्याय वा धर्मध्यान करना प्रोषधप्रतिमा कहलाती है। यह प्रोषध उत्कृष्ट १६ पहर का, मध्यम १२ पहर का और जघन्य ८ पहर का होता है। विशेष पृष्ठ नं० ४१ पर लिखा है।

सचित्तत्यागप्रतिमा का लक्षण—

जो परिहरै सचित्त सब बीज पत्र प्रवाल कद फल बीज।
अरु अप्रासुक जल भी सोय, सचित्तत्याग प्रतिमाधर सोय॥५

हरी वनस्पति अर्थात् कच्चे फल, फूल, बीज, पत्ते वगैरह नहीं खाना, पानी भी प्रासुक कर पीना, वनस्पति को + प्रासुक कर काम में लाना स्वच्छन्दता से हर एक वस्तु न खाना पीना × सचित्तत्यागप्रतिमा कहलाती है।

रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा का लक्षण—

मन वच तन कृत कारित अनुमोदै नहीं,
नवविध मैथुन दिवस माहिं जो वर्जहि।
अरु चतुर्विध आहार निशामाहीं तजै,
रात्रिभुक्तिपरित्यागप्रतिमा सो भजै ॥ ६ ॥

+ जीवसहित हरी वनस्पति को सचित्त कहते हैं। × इस प्रतिमाधारी के सचित्त का अचित्त करने का त्याग नहीं होता। सचित्त को अचित्त करने की रीति यह है—सूखी, पकी गर्म, खटाई या नमक से मिली हुई तथा छुरी और पिसी हुई वस्तु प्रासुक (अचित्त) हो जाती है। पानी में लवङ्ग आदि का चूर्ण डाल देने पर जब उसका वर्ण और रस बदल जाता है तब वह भी प्रासुक (अचित्त) हो जाता है। बीज सचित्त होता है।

मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से रात्रि में चारों प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग करना × रात्रिभोजनत्यागप्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी सूर्य छिपने के दो घड़ी पहिले से सूर्य निकलने के दो घड़ी बाद तक भोजन नहीं कर सकता। कहीं कहीं इस प्रतिमा का नाम 'दिवामैथुनत्याग' (दिन में मैथुनत्याग करना) भी कहा है।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा का लक्षण—

मैथुन नव सम्बन्ध प्रभेद, सर्वप्रकार तजे निरखेद।
नारिकथादिक भी परिहरै, ब्रह्मचर्य प्रतिमा को धरै ॥७॥

मन, वचन, काय या कृत, कारित, अनुमोदना से अपनी भी स्त्री का त्याग करना ब्रह्मचर्यप्रतिमा कहलाती है।

आरम्भत्यागप्रतिमा का लक्षण—

जो कछु अल्प बहुत अघकाज, गृहसम्बन्धी सो सब त्याज।
निरारम्भ है सुपरत रहै, सो जिय अष्टम प्रतिमा गहै ॥८॥

हिंसा के कारण-स्वरूप नौकरी, खेती, व्यापार आदि गृहकार्य सम्बन्धी सभी तरह की क्रियाओं का मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदना से त्याग करना "आरम्भ-त्याग" प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी स्नान, दान और

× मास-दोष की अपेक्षा दर्शनप्रतिमा में और त्रसहिंसा की अपेक्षा व्रतप्रतिमा में यद्यपि रात्रि में चारों प्रकार के आहारों का अतिचारसहित त्याग हो जाता है तथापि पुत्र पौत्रादि कुटुम्बी तथा अन्यजनों के निमित्त से कृत, कारित, अनुमोदना सम्बन्धी जो दोष आते थे उनके यथावत् त्याग की प्रतिज्ञा यहाँ होती है।

पूजन कर सकता है। अर्थात् धर्मकार्य का आरम्भ कर सकता है। इस दर्जे का गृहस्थ घर में रह कर भी धर्म साधन कर सकता है और घर को छोड़ कर भी धर्मसाधन कर सकता है। जो बुलाता है उसके यहाँ भोजन कर आता है। चातुर्मास करना इसके लिये अनिवार्य है।

परिग्रहत्यागप्रतिमा का लक्षण—

वस्त्रमात्र रख परिग्रह अन्य, त्याग करै जो व्रतसम्पन्न।
तामें पुनि मूर्च्छा परिहरै, नवमीप्रतिमा सो भवि धरै ॥६॥

धन, धान्य आदि दश प्रकार के बाह्य परिग्रह को पाप का कारण जान त्याग कर सन्तोष धारण करना परिग्रहत्यागप्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी अपने लिये कुछ आवश्यक वस्त्र या बर्तन रख लेता है। रुपया पैसा नहीं रखता, घर का त्याग कर धर्मशाला आदि एकान्त स्थान में रहता है। द्रव्य से पूजन भी नहीं करता। भोजनशुद्धि का निश्चय रहने पर निमंत्रण स्वीकार करता है।

अनुमतित्यागप्रतिमा का लक्षण—

जो प्रमाण अघमय उपदेश, देय नहीं पर को लवलेश।
वसु अनुमोदन भी जो तजै, सो ही दशमीप्रतिमा सजै ॥

खेती, व्यापार, विवाह आदि गृहस्थी के किसी भी लौकिक कार्य में अनुमोदना या सम्मति नहीं देना अनुमतित्याग—

जान पड़ता है कि व्रतप्रतिमा से लेकर किसी भी प्रतिमा में गृहत्यागी होने पर उसके कुटुम्बसम्बन्धी वृद्धि हानि का सूआ सूतक नहीं माना जाता, क्योंकि अब उसके कुटुम्ब सम्बन्ध नहीं रहा। जूता व छतरी का त्याग आठवीं प्रतिमा में होता है।

प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी भोजन के समय जो श्रावक उसे अपने यहाँ भोजन को बुलाता है उसके यहाँ भोजन कर आता है। परन्तु यह नहीं कहता कि मेरे लिये अमुक भोजन बनाओ। उदासीन होकर प्रायः चैत्यालय या मठ आदि में रह कर धर्मध्यान में तत्पर रहता है।

उद्दिष्टत्यागप्रतिमा का लक्षण—

ग्यारम थान भेद हैं दोय, इक क्षुल्लक एक ऐलक सोय।
खण्डवस्त्र धर प्रथम सुजान, युत कौपीनहि दुतिय पिछान॥
ये गृहत्याग मुनिन ढिंग रहैं, या मठ मन्दिर में निवसहैं।
उतर उदण्ड उचित आहार, करहिं शुद्ध अन्नाय निवार॥

घर छोड़कर वन या मठ में तपश्चरण करना, × खण्डवस्त्र या लंगोट धारण करना, बिना याचना किये भिक्षावृत्ति से योग्य आहार करना अपने निमित्त बनाया भोजन, पीछी, कमण्डलु या वसतिका नहीं लेना "उद्दिष्टत्यागप्रतिमा" कहलाती है। इस प्रतिमा के दो भेद हैं। १—क्षुल्लक और २—ऐलक।

क्षुल्लक का लक्षण—

जो एक लंगोटी या ओढ़ी चद्दर (खण्डवस्त्र) रखते हैं, बाल कैंचो या उस्तरे से बनवाते हैं, +पीछी और कमण्डलु रखते हैं, चर्या से गृहस्थ के यहाँ बैठकर किसी पात्र में भोजन करते हैं वे क्षुल्लक कहलाते हैं।

× जिससे शिर ढकता है तो पैर नहीं ढकता और पैर ढकता तो शिर नहीं ढकता ऐसा वस्त्र 'खण्डवस्त्र' कहलाता है।

+ कहीं कहीं कोमलवस्त्र रखने का भी विधान है। शूद्र क्षुल्लक लोहे का और उच्चवर्ण वाले पीतल का पात्र रखते हैं।

ऐलक का लक्षण—

जो अपने केशों का लोच करते हैं, केवल लंगोटी, पीछी वा कमण्डलु रखते हैं। चर्या से जाकर गृहस्थ के यहाँ बैठकर अपने हाथ पर ही रखकर भोजन करते हैं और मुनिव्रत का अभ्यास करते हैं उन्हें ऐलक कहते हैं। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के ही होते हैं।

प्रतिमाधारी के गुणस्थान—

इमि सब प्रतिमा एकादश, 'दौल' देशव्रत थान।
गहै अनुक्रम मूल सह, पालें भवि सुखदान॥

ये ११ प्रतिमाएँ 'देशव्रत' नामक पंचम गुणस्थान में होती हैं। इनको क्रम से पालने वाला भव्य स्वर्गादि का उत्तम सुख पाता है। इनमें से १ से ६ प्रतिमा वाले जघन्यश्रावक, ७ से ९ प्रतिमा वाले मध्यमश्रावक तथा १० वा ११ वीं प्रतिमा वाले उत्तम श्रावक कहलाते हैं।

प्रश्नावली

१—अनुमतिप्रतिमा, ऐलक, क्षुल्लक, प्रतिमा और सचित्त का लक्षण कहिये?

२—अंतिम प्रतिमाधारी, प्रतिमा के भेद बतलाइये?

३—प्रतिमाधारी के कौन सा गुणस्थान होता है?

४—प्रतिमाओं का धारण कौन, कब और क्यों करता है।

५—किस प्रतिमा के पालन के लिये उससे पहिले की प्रतिमा का पालन करना आवश्यक है?

६—श्रावक की प्रतिमा और भगवान् की प्रतिमा में क्या अन्तर है? दोनों में कुछ सम्बन्ध है या नहीं?

७—आरम्भ के त्यागी, प्रोषधोपवासी, लौकिक कार्यों की अनुमति के त्यागी और लंगोटी के सिवाय सब परिग्रह के

के कौन कौन प्रतिमाएँ हैं ?

—व्यापार, रेलकी सुसा लन्दनयात्रा, मृत्यु का युद्ध, अध्यापकी, ज्यो सम्पादकी, वकालात, राज्य और न्याय करते कौनसी प्रतिमा का पालन सकता है ?

९—पहली, सातवीं, नवमीं, ग्यारहवीं प्रतिमा का कौन कौन काम ता ?

१०—द्वितीय प्रतिमाधारी में भोजन करेगा या ? यदि नहीं तो रात्रि नत्याग छठवीं प्रतिमा रखी ?

११—द्वितीय प्रतिमाधारी त्रिकाल सामयिक करना वश्यक है या नहीं ?

१२—सामायिक की विधि लाइये ? सामायिक किस तिमाधारी को अनिवार्य है ?

१३—छठवीं प्रतिमा का सरा नाम क्या है और उससे आप क्या समझे हैं।

१४—नवम प्रतिमाधारी सोसभा म भाषण देगा या नहीं ?

१५—अनुमति त्यागी निम न्त्रण मानेगा या नहीं ?

१६—अष्टम प्रतिमाधारी मंदिर बनवाने की सलाह देगा या नहीं ?

१७—अंतिम प्रतिमाधारी श्रावक है या मुनि ? इसके पास कौन कौन वस्तुएँ होती हैं ? उसके अणुव्रत होते हैं या महाव्रत ?

१८—अंतिम प्रतिमाधारी पाठशाला की स्थापना, पाठशाला के लिये चन्दा की अनुमोदना, रेल घोड़ा गाड़ी में सवारी, शास्त्रवाचना, ग्रन्थ रचना और रोग की सूचना करेगा या नहीं ?

१९—प्रतिमाधारी जिन मंदिर रहित ग्राम में रहेगा ?

२०—एक ब्रह्मचारी प्रोषधोपवास नहीं करते तो उनके कौनसी प्रतिमा हो सकती है ?

पाठ आठवां
तत्वों और पदार्थों का वर्णन



तत्व का लक्षण—

जिनके जानने या श्रद्धान करने से हमें अपने आत्मा के सच्चे हित का ज्ञान हो सकता है हम अपने आत्मा को पवित्र कर सकते हैं उन बातों का, या वस्तु के स्वभाव को तत्व कहते हैं।

तत्वों के भेद या नाम—

१–जीव, २–अजीव ३–आस्रव, ४–बन्ध, ५–संवर, ६–निर्जरा और ७ मोक्ष ये सात तत्व हैं। इनमें पुण्य और पाप मिला देने के ९ पदार्थ हो जाते हैं।

जीव और अजीव का लक्षण—

जिसमें भावप्राण और द्रव्यप्राण दोनों या कोई एक पाया जाता है उसे जीव कहते हैं। जिसमें एक भी प्राण नहीं होता वह अजीव कहलाता है।

जीवों के द्रव्यप्राणों का विवरण

जीव	इन्द्रियाँ	बल	आयु,	श्वास,	संख्या
एकेन्द्रिय	स्पर्शन	काय	”	”	४
द्वीन्द्रिय	” रसना	वचन ”	”	”	६
त्रीन्द्रिय	” ” घ्राण	” ”	”	”	७
चतुरिन्द्रिय	” ” ” चक्षु	” ”	”	”	८
पंचेन्द्रिय { असैनी	” ” ” ” कर्ण	” ”	”	”	९
पंचेन्द्रिय { सैनी	” ” ” ” ” मन	” ”	”	”	१०

प्राणों के भेद या विभाग—

ज्ञान और दर्शन या जानने और देखने की शक्ति ये भावप्राण हैं। तथा ५ इन्द्रियाँ, ३ बल (मनोबल, वचनबल, कायबल), आयु और स्वासोच्छ्वास ये १० द्रव्यप्राण हैं।

आस्रव का लक्षण—

राग द्वेष आदि भावों के कारण पुद्गल कर्मों का खिंच कर आत्मा की ओर आना आस्रव कहलाता है। जैसे किसी नाव में छेद हो जाने पर पानी आने लगता है, वैसे ही आत्मा के शुभ अशुभ भाव होने पर पुद्गल कर्म खिंच कर आत्मा की ओर आते हैं। अथवा जिस प्रकार गरम लोहा पानी को खींच लेता है, उसी प्रकार प्राणी अपने योग और भावों द्वारा कर्मों को अपनी ओर खींच लेता है। वही आस्रव कहलाता है।

आस्रव के भेद या उनके लक्षण—

आत्मा के जिन राग द्वेष आदि भावों से कर्म आत्मा की ओर आते हैं उन भावों को 'भाव आस्रव' कहते हैं। पुद्गलमय शुभ और अशुभ कर्म परमाणुओं का आत्मा की ओर खिंच कर आना 'द्रव्य आस्रव' कहलाता है।

आस्रव के कारण—

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग इन चार मुख्य कारणों से ही कर्मों का आस्रव होता है। ये चार आस्रव के कारण हैं।

मिथ्यात्व का लक्षण, कार्य या भेद—

आत्मा से भिन्न संसार की वस्तुओं में राग द्वेष करना और शुद्ध आत्मा का अनुभव (निश्चय या श्रद्धान) न होना मिथ्यात्व या मिथ्यादर्शन कहलाता है। या अतत्त्वश्रद्धान

होना अर्थात् यथार्थ तत्वों तथा उनके यथार्थ स्वरूप से उल्टे अयथार्थ तत्वों पर तथा उनके अयथार्थ स्वरूप पर विश्वास करना मिथ्यात्व कहलाता है। इस मिथ्यात्व के कारण संसारी प्राणी के अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प हुआ करते हैं और शान्तस्वभाव का नाश हो जाता है इसी से यह कर्मों के आस्रव का कारण है। एकान्त, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान ये ५ मिथ्यात्व × के भेद हैं।

अविरति का लक्षण व भेद—

आत्मा का अपने शुद्ध चिदानन्दमय स्वभाव से विमुख होकर बाहिरी अन्य विषयों में लगना अविरति कहलाती है। पांचों इन्द्रियां और मन को वश में नहीं रखना तथा छह काय के जीवों की हिंसा करना ये १२ अविरति के भेद हैं।

× १—वस्तु में रहने वाले अनेक गुण या धर्मों का लक्ष्य न रख उसका एक ही रूप श्रद्धान करना एकान्त मिथ्यात्व कहलाता है। २—वस्तु के असली स्वरूप को न जान कर उल्टा श्रद्धान करना विपरीत मिथ्यात्व कहलाता है। ३—सुगुरु सुदेव सुधर्म, या कुगुरु कुदेव-कुधर्म इन सब को एक सदृश मानना—पूजना या सच्चे तत्वों या झूठे तत्वों को एकसा समझना, दोनों को एकसी महत्व की दृष्टि से देखना या सभी मतों को एकरूप मानना विनय मिथ्यात्व कहलाता है। ४—किसी वस्तु के स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय न होना, यह वस्तु ऐसी है या नहीं ? कौन सत्य है कौन असत्य ? इस प्रकार भ्रम बना रहना संशय मिथ्यात्व कहलाता है। ५—हित अहित की परीक्षा किये बिना ही श्रद्धान करना और विवेकरहित रहना अज्ञान-मिथ्यात्व कहलाता है।

नोट —कषायों के * लक्षण या २५ भेद तथा भेदों के लक्षण इसी पुस्तक के दशवें पाठ में लिखे हैं। इन कषायों से भी कर्मों का आस्रव होता है।

योग का लक्षण—

मन से कुछ विचारने, जिह्वा से कुछ बोलने और शरीर से कोई काम करने से मन, जिह्वा और शरीर का हलन चलन होना × और मन आदि के हलन चलन से उनमें रहने वाले आत्मा का हलन चलन होना † योग कहलाता है। आत्मा में हलन चलन होने से भी कर्मों का आस्रव होता है।

योग के भेद या प्रभेद—

योग के द्रव्ययोग और भावयोग ये दो भेद हैं। अथवा मनोयोग, वचनयोग और काययोग ये तीन भेद भी हैं। योग के विशेष भेद १५ पन्द्रह हैं—

सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभय मनोयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारक मिश्रकाययोग, कार्माणयोग, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभयवचनयोग ये १५ योग के भेद हैं।

आस्रव के ५७ कारण या भेद—

५ मिथ्यात्व, १२ अविरति, २५ कषाय और १५ योग कुल मिलाकर आस्रव के भेद या कारण ५७ होते हैं।

---

* जो आत्मा के गुण का घात करता है अथवा जिससे आत्मा विभावरूप होकर बन्ध अवस्था को प्राप्त होता है उसे कषाय कहते हैं।

× यह द्रव्ययोग का लक्षण है।

† यह भावयोग का लक्षण है।

बन्ध का लक्षण—

राग द्वेष के निमित्त से आये हुए शुभ और अशुभ पुद्गल कर्मों का आत्मा के साथ दूध और जल के समान मिल कर एक मेक हो जाना बन्ध कहलाता है। जैसे नाव म छेद के द्वारा पानी आकर नाव में इकट्ठा हो जाता है वैसे ही कर्म आकर आत्मा के साथ बँध जाते हैं।

बन्ध के भेद या उनके लक्षण—

भावब व और द्रव्यबन्ध ये दो बन्ध के भेद हैं। आत्मा के जिन शुभ या अशुभ भावों से कर्म का बन्ध होता है उन भावों को भावबन्ध कहते हैं। तथा शुभ या अशुभ भावों के कारण जो कर्म परमाणु आत्मा के प्रदेशों के साथ दूध और पानी के समान एकमेक होकर मिल जाते हैं उन्हें द्रव्यबन्ध कहते हैं।

बन्ध का दृष्टान्त—

जैसे धूलि उड कर गीले कपडे म लग (चिपक) जाती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व आदि परिणामों से कर्म आते हैं और वे आत्मा के प्रदेशों के साथ मिल जाते हैं।

बन्ध के कारण—

आस्रव और बन्ध यद्यपि साथ साथ एक ही समय म होता है तो भी इनमें कार्यकारण-भाव है। आस्रव कारण है, और बन्ध कार्य है। इसलिये जितने आस्रव हैं, वे सभी बन्ध के कारण हैं।

संवर का लक्षण—

आस्रव का न होना अर्थात् आने हुये कर्मों का रुकना संवर कहलाता है। जैसे जिस छेद से नाव में पानी आता है,

उस छेद में डाट लगाकर पानी आना बन्द कर दिया जाता है, वैसे ही शुभ और अशुभ परिणामों द्वारा आने वाले कर्म शुद्ध भावों से रोक दिये जाते हैं। वही संवर कहलाता है।

संवर के भेद और उनके लक्षण—

भावसंवर और द्रव्यसंवर ये दो संवर के भेद हैं। जिन परिणामों से कर्मों का आना रुकता है, वे परिणाम भावसंवर कहलाते हैं। तथा भावसंवर के द्वारा पुद्गलपरमाणुओं का कर्म-रूप होकर आत्मा की ओर न आना द्रव्यसंवर कहलाता है।

संवर के कारण—

३ गुप्ति, ५ समिति, १० धर्म, १२ अनुप्रेक्षा (भावना), २२ परीषहजय और ५ चारित्र × ये ५७ संवर के मुख्यकारण हैं। इनमें से गुप्ति, समिति और धर्म का वर्णन पंचपरमेष्ठी के मूलगुणों में इसी पुस्तक के पृष्ठ नं० २४, २८, ३० में है। अनुप्रेक्षाओं (भावनाओं) का वर्णन इसी पुस्तक के द्वितीय भाग के द्वितीय पाठ में किया गया है। और परीषहों का वर्णन इसी पुस्तक में आगे पृष्ठ ७२ पर देखिये।

चारित्र का लक्षण या भेद—

आत्मस्वरूप में स्थिर होना चारित्र कहलाता है। इसके सामायिक और छेदोपस्थापना आदि ५ भेद हैं।

× सब जीवों पर समताभाव रखना, सुख दुख में समान रहना तथा शुभ और अशुभ विकल्पों का त्याग करना सामायिक चारित्र कहलाता है। २—सामायिक चारित्र से डिग जाने पर अपने को शुद्ध आत्मा के अनुभव में फिर लगाना तथा व्रत आदिक भंग हो जाने पर प्रायश्चित आदि लेकर फिर सावधान होना छेदोपस्थापना चारित्र कहलाता है। ३—राग द्वेष आदिक

निर्जरा का लक्षण—

आत्मा के साथ बँधे हुए कर्मों का थोड़ा थोड़ा भाग क्षय होजाना निर्जरा कहलाती है। जैसे नाव में छिद्र के द्वारा आकर जो पानी भर जाता है वह थोड़ा थोड़ा करके बाहर निकाल दिया जाता है वैसे ही आत्मा के साथ बँधे हुए कर्मों को धीरे धीरे तपश्चरण द्वारा या उनकी स्थिति की पूर्णता द्वारा आत्मा से जुदा कर दिया जाता है वही निर्जरा है।

निर्जरा के भेद और उनके लक्षण—

भावनिर्जरा और द्रव्यनिर्जरा ये दो निर्जरा के भेद हैं। आत्मा के जिस परिणाम (भाव) से पुद्‌गलकर्म अपना फल देकर या बिना फल दिये नष्ट हो जाता है उस परिणाम को भाव निर्जरा कहते हैं। और कर्मरूप पुद्‌गलों का समय पाकर या तपश्चरण द्वारा आत्मा से अलग होने को द्रव्यनिर्जरा कहते हैं। +

विकल्पों का त्याग कर अहिंसा के साथ आत्मशुद्धि करना परिहार विशुद्धिचारित्र कहलाता है।

४—अपने आत्मा को कषाय से रहित करते करते सूक्ष्म लोभ कषाय नाममात्र को रह जाना सूक्ष्म साम्पराय कहलाता है। नाममात्र रहे सूक्ष्मलोभ कषाय को भी दूर करने की कोशिश करना सूक्ष्मसाम्परायचारित्र कहलाता है। ५—आत्मा का जैसा कषायरहित निष्कम्प शुद्ध स्वभाव है वैसा होकर स्वमें मग्न होना यथाख्यात चारित्र कहलाता है।

+ फल देकर अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मों का आत्मा से स्वयमेव जुदा होना सविपाक निर्जरा कहलाती है। तथा स्थिति पूर्ण हुए बिना ही तप करके किसी कर्म का आत्मा से जुदा कर देना अविपाकनिर्जरा कहलाती है।

मोक्ष का लक्षण—

ज्ञानावरण आदिक आठ कर्मों का क्षय होकर आत्मा का सर्वथा शुद्ध हो जाना मोक्ष कहलाता है। जैसे किसी नाव के अन्दर भरा हुआ सब पानी बिलकुल निकाल कर नाव को साफ कर दिया जाता है उसी प्रकार संवर पूर्वक निर्जरा होते होते जब सब कर्मों का क्षय हो जाता है और केवल आत्मा का शुद्ध स्वरूप रह जाता है तभी वह आत्मा ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से तीनों लोकों के ऊपर जा विराजमान होता है, इसी का नाम मोक्ष है।

मोक्ष के भेद और उनके लक्षण—

द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष ये दो मोक्ष के भेद हैं। आत्मा का जो शुद्ध परिणाम समस्त पुद्गल कर्म के नाश का कारण होता है, वह परिणाम भावमोक्ष कहलाता है। द्रव्यकर्मों का आत्मा से सर्वथा दूर हो जाना द्रव्यमोक्ष कहलाता है।

पदार्थ का लक्षण और भेद—

जिसमें तत्त्व पाया जाता है उसे पदार्थ कहते हैं। सात तत्त्व और पुण्य तथा पाप मिला कर ९ पदार्थ होते हैं।

पुण्य का लक्षण और दृष्टान्त—

जिसके उदय से प्राणी को इष्टवस्तु तथा सुखदायक सामग्री प्राप्त होती है, उसे पुण्य कहते हैं। जैसे—सुपुत्र की प्राप्ति, व्यापार में लाभ और उच्चपद की प्राप्ति ये सब पुण्य के उदय से होते हैं।

पुण्यबन्ध के कारण—

धर्मपालन करना, पूजन करना, दान देना, शिक्षाप्रचार और परोपकार करना आदि शुभ (अच्छे) कार्यों से पुण्य का बन्ध होता है।

पाप का लक्षण और दृष्टान्त—

जिसके उदय से प्राणी को अनिष्टवस्तु और दुःखदायक सामग्री प्राप्त होती है उसे पाप कहते हैं। जैसे—पुत्र मर जाना, घाटा पड़ जाना, चोरी हो जाना और रोग हो जाना आदि। ये सब पाप के उदय से होते हैं।

पापबन्ध के कारण—

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, परनिन्दा करना, किसी का बुरा विचारना और जुआ खेलना आदि खराब कार्यों के करने से पाप का बन्ध होता है।

प्रश्नावली—

१—अजीव, अज्ञान, अनुप्रेक्षा, अविरति, आस्रव, एकान्त मिथ्यात्व, कषाय कुनय मिथ्यात्व, गुप्ति चारित्र, छेदोपस्थापनाचारित्र, तत्त्व, पदार्थ, परिहारचारित्र, पाप, पुण्य, प्राण, विपरीतमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व, मिथ्यात्व, मोक्ष, यथाख्यातचारित्र, योग, समिति, सामायिकचारित्र, सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र और संशयमिथ्यात्व का लक्षण कहिये?

२—अजीव, अनुप्रेक्षा, अविरति, आस्रव, कषाय, गुप्ति, चारित्र, तत्त्व, निर्जरा, पदार्थ, प्राण, प्राणरहित पदार्थ, बन्ध, मिथ्यात्व, मोक्ष, योग, समिति और संवर के भेद बतलाइये?

३—असैनी, चींटी तिर्यच, देव, नारकी, पंचेन्द्रिय, वृक्ष, मकड़ा बन्दर और हाथी के कौन कौन प्राण होते हैं?

४—प्राणरहित वस्तुएं या तत्त्वों के नाम कहिये?

५—ऐसा कौन जीव है जिसमें द्रव्यप्राण एक भी नहीं होता?

६—जीवतत्त्व का और तत्त्वों से कौनसा सम्बन्ध? और कब से? कब तक है?

७—किस हालत में आस्रव और बन्ध नहीं होते केवल निर्जरा होती है ?

८—पहिले आस्रव होता है या बन्ध ?

९—भावास्रव और द्रव्यास्रव में, भावनिर्जरा और द्रव्य निर्जरा में, निर्जरा और मोक्ष में क्या अन्तर है, उदाहरण देकर बतलाइये ?

१०—जहाँ भावास्रव होता है वहाँ द्रव्यास्रव होता है या नहीं ?

११—बन्ध के कारण कौन कौन हैं ? ऐसे कौन कौन कारण हैं जिनसे बन्ध नहीं होता ?

१२—बन्ध जो सुना जाता है वह किस वस्तु का होता है ?

१३—कौनसा चारित्र होने पर आस्रव और बन्ध नहीं होते ?

१४—पहिले निर्जरा होती है या मोक्ष ?

१५—किन किन कार्यों के करने से पुण्य और पाप होता है ?

१६—पुण्यपाप को उदाहरण देकर समझाइये ?

१७—पाठशाला, अनाथालय, औषधालय, महिलाश्रम खुलवाने, छात्रवृत्ति देने, स्त्रियों को पढ़ाने, सन्तान को न पढ़ाने, भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति करने, मंदिर होने व उन्हीं की व्यवस्था न होने पर भी अपने नाम को नया मंदिर बनवाने, धर्मादा के रुपयों का दुरुपयोग करने, मंदिरों का पैसा न देने, गुप्त दान या धर्म करने किसकों भ धर्म की पुस्तकें बाँटने, निर्धनों की सहायता करने, किसकों से नाता रखने, बेटी बेच कर पूजा प्रतिष्ठा कराने, छोटी उमर में सन्तान का विवाह करने, रुपया लेकर अयोग्य वर से विवाह करने, धर्म के लिये झूठ बोलने, झूठी हाँ में हाँ मिलाने, उल्टा अर्थ समझा देने, पिता के न देने पर पुस्तकों के पैसा चुराने, अपने लिये भीख माँगने और धर्मकार्य में रिशवत लेने आदि से पुण्य होता है या पाप ?

पाठ नवमां

बाइस-परीषहों का वर्णन



परीषह का लक्षण—

उत्पन्न हुई भूख-आदि की वेदना को कर्मों की निर्जरा और कायक्लेश करने के लिये शान्त भावों से सह लेना परीषह कहलाती है। परीषहों के भेद—क्षुधा, तृषा, शीत उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ये बाइस परीषह हैं।

१-क्षुधापरीषह का लक्षण—क्षुधा (भूख) के दुख को शान्त-भाव से सह लेना क्षुधापरीषह कहलाती है।

२-तृषापरीषह का लक्षण—तृषा (प्यास) के दुख को शान्तभाव से सह लेना तृषापरीषह कहलाती है।

३-शीतपरीषह का लक्षण—शीत (सर्दी, जाड़े) का दुख शान्तभाव से सहलेना शीतपरीषह कहलाता है।

४-उष्णपरीषह का लक्षण—उष्ण (गर्मी) का दुख शान्तभाव से सह लेना उष्णपरीषह कहलाती है।

५-दंशमशकपरीषह का लक्षण—डांस, मच्छर, बिच्छू, कानखजूरा, चिंवटी आदि के काटने से उत्पन्न दुख को शान्त भाव से सह लेना दंशमशकपरीषह कहलाती है।

६-नाग्न्यपरीषह का लक्षण—

वस्त्रत्यागी होने से नग्न रहने पर भी मन में किसी प्रकार लज्जा या विकार नहीं करना नाग्न्यपरीषह कहलाती है।

७-अरतिपरीषह का लक्षण—

इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में राग द्वेष नहीं करना, समताभाव धारण करना अरतिपरीषह कहलाती है।

प्रश्नावली—

१—परीषह से आप क्या समझते हैं ?

२—अमुक परीषह का लक्षण बतलाइये ?

३—परीषहों के नाम या भेद बतलाइये ?

४—परीषह कौन क्यों सहन करते हैं ? उनके सहने से क्या लाभ होता है ?

५—ऐसा कौन बताओ जिसको परीषह सहने की जरूरत ही नहीं होती ?

६—एक समय में एक ही परीषह होती है या ज्यादह ?

७—द्वीपायन ने क्रुद्ध होकर कौन परीषह नहीं जीती थी ?

८—ऐसी कौन परीषहें हैं जो परस्पर विरुद्ध हैं ?

९—अरिहन्त के कितनी परीषहें होती हैं ? उनसे उन्हें दुःख होता है या नहीं ?

१०—निम्न प्रश्नों में कौन कौन परीषहें सहन की गई हैं ?

क—सुकुमाल का आधा शरीर स्यालनी ने खा लिया पर वे ध्यानारूढ ही रहे।

ख—एक साधु ने भयङ्कर रोग हो जाने पर भी दवा न मांगी।

ग—राजा श्रेणिक ने एक मुनिराज के गले में मरा सर्प डाला परन्तु उन्होंने आशीर्वाद ही दिया।

घ—एक मुनि जेठ की दुपहरी में पर्वत पर ध्यान लगाये रहे, गर्मी की पर्वाह नहीं की।

च—स्वर्ग से आकर सीता के जीव ने ध्यानारूढ राम को अपने हावभाव से मोहित करने की कोशिश की परन्तु वे विचलित न हुये।

छ—कुछ उपद्रवियों ने एक कर्त्तव्यशील साधु पर पत्थर फेंके और गालियाँ दीं परन्तु वे क्रुद्ध नहीं हुये।

पाठ दशवां

कर्मों के उत्तर भेद या प्रकृतियाँ



ज्ञानावरणकर्म की	५	दर्शनावरणकर्म की	६
वेदनीयकर्म की	२	मोहनीयकर्म की	२८
आयुकर्म की	४	नामकर्म की	६३
गोत्रकर्म की	२	अन्तरायकर्म की	५

इस प्रकार सब मिलाकर कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ या उत्तर भेद १४८ एकसौ अड़तालीस हैं।

ज्ञानावरणकर्म की उत्तर प्रकृतियाँ या भेद

मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ये ५ ज्ञानावरणकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

मतिज्ञानावरणकर्म का लक्षण—

१-जिस कर्म के उदय से मतिज्ञान का आवरण × या घात होता है उसे ⊛मतिज्ञानावरण कहते हैं।

२-श्रुतज्ञानावरणकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से श्रुतज्ञान का आवरण या घात होता है उसे श्रुतज्ञानावरण कहते हैं।

× आवरण=आड़, घात या परदा। ⊛ यद्यपि मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणकर्म के किंचित् क्षयोपशम से थोड़ा बहुत ज्ञान सभी प्राणियों के होता है, परन्तु शेष सब ज्ञानों को पाँचों ज्ञानावरण कर्म न्यूनाधिकरूप से ढाँके रहते हैं।

३–अवधिज्ञानावरण कर्म का लक्षण—जिसके कर्म के उदय से अवधिज्ञान का आवरण या घात होता है उसे अवधिज्ञानावरण कहते हैं।

४ मनःपर्ययज्ञानावरणकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से मनःपर्ययज्ञान का आवरण या घात होता है उसे मनःपर्ययज्ञानावरण कहते हैं।

५–केवलज्ञानावरणकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से केवलज्ञान का आवरण या घात होता है या सर्वज्ञता प्राप्त नहीं होती उसे केवलज्ञानावरण कहते हैं।

दर्शनावरणकर्म की उत्तरप्रकृतियाँ या भेद

चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये ९ दर्शनावरण कर्म की प्रकृतियाँ या भेद हैं।

१–चक्षुदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से चक्षु द्वारा होने वाले सामान्य अवलोकन का घात होता है या अन्धा, काना या दृष्टिहीन होता है उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

२–अचक्षुदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से चक्षु के सिवाय अन्य चार इन्द्रियाँ या मन द्वारा होने वाले सामान्य अवलोकन का घात होता है या बहिरा या गूँगा होता है उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

३–अवधिदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से अवधिदर्शन का घात होता है उसे अवधिदर्शनावरण कहते हैं।

४–केवलदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से केवलदर्शन अर्थात् सर्वदर्शीपने का घात होता है उसे केवल-दर्शनावरण कहते हैं।

५-निद्रादर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से निद्रा (नींद) आती है उसे निद्रादर्शनावरण कहते हैं।

६-निद्रानिद्रादर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से नींद के बाद फिर नींद (गाढनींद) आती है, आँख भी नहीं खोल सकता उसे निद्रानिद्रादर्शनावरण कहते हैं।

७-प्रचलादर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से प्राणी कुछ जागता है और कुछ सोता है उसे प्रचला कहते हैं।

८-प्रचलाप्रचलादर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से सोते समय मुख से लार बहती है, कुछ अङ्गोपाङ्ग भी चलते हैं और मुह आदि घुमाने पर भी चेत नहीं होता उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं।

९-स्त्यानगृद्धिदर्शनावरण का लक्षण—जिस कर्म के उदय से प्राणी सोते समय नाना प्रकार के रौद्र कार्य कर डालता है और जागने पर मालूम भी नहीं रहता कि मैंने क्या किया उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं। इसके उदय से प्राणी सोते ही सोते जागकर आजाता है। नाचने, गाने, दौड़ने और मारने लगता है।

वेदनीयकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

सातावेदनीय और असातावेदनीय ये दो वेदनीय कर्म की प्रकृतियाँ या भेद हैं।

श्रुतदर्शन और मनःपर्ययदर्शन न मानने का कारण—
१—श्रुतज्ञान, मतिज्ञान या श्रुतज्ञान के ही पश्चात् होता है उसके पेश्तर दर्शन नहीं होता इसलिये श्रुतदर्शन नहीं माना गया है। २—मनःपर्ययज्ञान भी ईहामतिज्ञान के ही पश्चात् होता है इससे इसके पूर्व दर्शनोपयोग नहीं होता इसलिये मनःपर्ययदर्शन नहीं माना गया।

१–सातावेदनीयकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से शारीरिक और मानसिक आदि अनेक प्रकार सुख सामग्री या सुख की प्राप्ति होती है उसे सातावेदनीयकर्म कहते हैं।

२–असातावेदनीयकर्म का लक्षण—जिस कर्म के उदय से दुःखदायकसामग्री या दुःख की प्राप्ति होती है उसे असातावेदनीयकर्म कहते हैं।

मोहनीयकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दो मोहनीयकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

दर्शनमोहनीय का लक्षण—जिस कर्म के उदय से आत्मा के सम्यक्त्वगुण का घात होता है उसे दर्शनमोहनीय कहते हैं।

दर्शनमोहनीय के भेद—मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति और सम्यक्त्व प्रकृति ये तीन दर्शनमोहनीय के भेद हैं।

१–मिथ्यात्वप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से सर्वज्ञभाषितमार्ग से विमुखता, तत्त्वार्थश्रद्धान में अनुत्साह और हित अहित की परीक्षा में असमर्थता होती है उसे मिथ्यात्वप्रकृति कहते हैं।

२–सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से दही और गुड़ के मिले हुये स्वाद के समान तत्त्वों के श्रद्धान और अश्रद्धान रूप मिले हुए भाव होते हैं उसे सम्यङ्मिथ्यात्व कहते हैं।

३–सम्यक्त्वप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से यथार्थ तत्त्वों का श्रद्धान चल, मलिन और अगाढ़ नामक दोषों से दूषित होता है उसे सम्यक्त्वप्रकृति कहते हैं।

चारित्रमोहनीय का लक्षण—जिस कर्म के उदय से आत्मा के चारित्रगुण का घात होता है उसे चारित्रमोहनीय कहते हैं।

चारित्रमोहनीय के भेद—कषायमोहनीय और अकषाय-मोहनीय ये दो चारित्रमोहनीय के भेद हैं।

कषायमोहनीय का लक्षण—जो आत्मा के ज्ञानादिगुण, शुद्ध या शुभ भाव, धर्मक्षेत्र और उत्तमक्षमादि धर्म को कृश या नष्ट करता है उसे कषायमोहनीय कहते हैं।

कषायमोहनीय के भेद—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलन ये ४ कषायमोहनीय के भेद हैं। इनमें भी प्रत्येक के क्रोध, मान, माया, लोभ ये ४।४ भेद हैं। इस प्रकार कषायमोहनीय के १६ भेद हो जाते हैं।

अनन्तानुबन्धी कषाय का लक्षण—जो कषाय आत्मा के सम्यक्त्व तथा स्वरूपाचरणचारित्र गुण का घात करता है और मिथ्यात्व को मदद देता है उसे अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय का लक्षण—जिस कषाय के उदय से जीव के परिणाम देशचारित्र (श्रावक के चारित्र) धारण करने योग्य नहीं होते उसे अप्रत्याख्यानावरणकषाय कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरणकषाय का लक्षण—जिस कषाय के उदय से जीव के परिणाम सकलचारित्र या मुनिव्रत धारण करने योग्य नहीं होते उसे प्रत्याख्यानावरणकषाय कहते हैं।

सञ्ज्वलनकषाय का लक्षण—जो कषाय आत्मा के यथाख्यातचारित्र का घात करता है, संयम के साथ जगमगाता रहता है या प्रमादादि दोषों द्वारा आत्मपरिणाम को जलाता है उसे सञ्ज्वलनकषाय कहते हैं।

अकषायमोहनीय का लक्षण—किंचित्कषाय या ईषत् कषाय को अथवा जो कषाय के साथ साथ अपना कार्य या फल दिखलाता है उसे अकषाय मोहनीय कहते हैं। इसके उदय से पर पदार्थों में विशेष रागभाव होता है।

अकषायमोहनीय के भेद—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये ६ अकषायमोहनीय के भेद हैं।

२०—हास्यप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से अपने को हँसी आती है उसे हास्यप्रकृति कहते हैं।

२१—रतिप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से इन्द्रियों के विषयों में अपना राग या प्रेम होता उसे रतिप्रकृति कहते हैं।

२२—अरतिप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से इन्द्रियों के विषयों में अपने को अरति या द्वेष होता है उसे अरति प्रकृति कहते हैं।

२३—शोकप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से शोक या चिंता होती है उसे शोक प्रकृति कहते हैं।

२४—भयप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से भय (डर) या उद्वेग होता है उसे भयप्रकृति कहते हैं।

२५—जुगुप्सा प्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से दूसरे से ग्लानि या घृणा होता है उसे जुगुप्सा प्रकृति कहते हैं।

२६—स्त्रीवेदप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से पुरुष से रमने की इच्छा होती है उसे स्त्रीवेदप्रकृति कहते हैं।

२७—पुरुषवेदप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से स्त्री से रमने की इच्छा होती है उसे पुरुषवेदप्रकृति कहते हैं।

२८—नपुंसकवेदप्रकृति का लक्षण—जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुष दोनों से रमने की इच्छा होती है उसे नपुंसकवेद प्रकृति कहते हैं।

नोट—३ दर्शनमोहनीय, १६ कषाय और ६ नोकषाय मिला कर मोहनीय कर्म के २८ भेद होते हैं।

आयुकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

नरकायु, देवायु, तिर्यगायु और मनुष्यायु ये ४ आयुकर्म की प्रकृतियां या भेद हैं।

१–नरकायु का लक्षण—जिस कर्म के उदय से प्राणी नारकी के शरीर में रुक रहता है उसे नरकायु कहते हैं।

२–देवायु का लक्षण—जिस कर्म के उदय से प्राणी देव के शरीर में रुक रहता है उसे देवायु कहते हैं।

३–तिर्यगायु का लक्षण—जिस कर्म के उदय से प्राणी तिर्यच के शरीर में रुक रहता है उसे तिर्यगायु कहते हैं।

४–मनुष्यायु का लक्षण—जिस कर्म के उदय से प्राणी मनुष्य के शरीर में रुक रहता है मनुष्यायु कहते हैं।

नामकर्म की प्रकृतियां या भेद—

४ गति, ५ जाति, ५ शरीर, ३ अङ्गोपाङ्ग, १ निर्माण, ५ बन्धन, ५ संघात, ६ संस्थान, ६ संहनन, ८ स्पर्श, ५ रस, २ गन्ध, ५ वर्ण, ४ आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, विहायोगति, उच्छ्वास, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति अपर्याप्ति, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ,

---

नरकायु और नरकगति नामकर्म में अन्तर—नरकायुकर्म का बन्ध होने पर प्राणी को नरक में अवश्य जाना पड़ता है परन्तु नरकगतिकर्म का बन्ध होने पर नरकगति में जाना ही पड़े ऐसा नियम नहीं। क्योंकि गतिकर्म का बन्ध प्रत्येक समय में होता है परन्तु उसकी निर्जरा हो जाती है। किन्तु जो गतिकर्म आयुकर्म के साथ बन्ध को प्राप्त होता है वह गतिकर्म नियमित रूप से फल देता है।

अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और तीर्थंकर ये ६३ नामकर्म की प्रकृतियां या भेद हैं।

गतिनामकर्म का लक्षण या भेद—जिस कर्म के उदय से प्राणी दूसरे भव या पर्याय को जाता है उसे गतिनामकर्म कहते हैं। इसके ४ भेद हैं—नरकगति, देवगति, तिर्यग्गति और मनुष्यगति।

जातिनामकर्म का लक्षण या भेद—जिस नामकर्म के उदय से अनेक जीवों में अविरोधी समान अवस्था प्राप्त होती उसे जातिनामकर्म कहते हैं। इसके ५ भेद हैं—एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजाति। यदि जाति नामकर्म न माना जाय तो जलकायिक और पृथ्वीकायिक जीवों को तथा मनुष्य और स्त्री पर्याय धारक जीवों को एक कोटि में नहीं रख सकते।

शरीरनामकर्म का लक्षण या भेद—जिस नामकर्म के उदय से शरीर धारण करना पड़ता है उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। शरीर के ५ भेद हैं—औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर और कार्माणशरीर।

१–औदारिकशरीर का लक्षण—मनुष्य और तिर्यंच के इन्द्रियों से दिखने योग्य स्थूल शरीर को औदारिकशरीर कहते हैं।

वैक्रियिकशरीर का लक्षण—जिस शरीर में स्थूल, सूक्ष्म, हलका, भारी आदि अनेक प्रकार के विकार होने की योग्यता होती है उसे वैक्रियिकशरीर कहते हैं।

३–आहारकशरीर का लक्षण—छटवें गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से जो एक हाथ का पुतला निकलता है उसे आहारकशरीर

अंगोपांग नामकर्म का लक्षण या भेद—

जिस कर्म के उदय से अंग उपांग का भेद प्रगट होता है उसे अंगोपांग नामकर्म कहते हैं। मस्तक, पीठ, हृदय, नितम्ब, २ हाथ और २ पैर ये ८ अंग हैं और नाक, अंगुली, कान वगैरह उपांग कहलाते हैं। औदारिक अंगोपांग, वैक्रियिक अंगोपांग और आहारक अंगोपांग ये ३ अंगोपांग नामकर्म के भेद हैं।

निर्माण नामकर्म का लक्षण या भेद—

जिस कर्म के उदय से अंगों और उपांगों का स्थान या प्रमाण बनता है उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं। स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माण ये दो निर्माण नामकर्म के भेद हैं।

१—जिस कर्म के उदय से जातिनामकर्म की सहायता द्वारा नाक, कान आदि की योग्य स्थान में रचना होती है उसे स्थान निर्माण नामकर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से आँख, नाक कान इत्यादि की लम्बाई चौड़ाई आदि का परिमाण यथावत् होता है उसे प्रमाण निर्माण नामकर्म कहते हैं।

कहते हैं। यह शरीर संशय दूर करने, वन्दना और दीक्षा आदिक कल्याणकों के लिये निकलता है।

४ तैजसशरीर का लक्षण—जिस कर्म के उदय से शरीर में तेज होता है उसे तैजसशरीर नामकर्म कहते हैं। इसके निःसरण स्वरूप और अनिःसरणस्वरूप दो भेद हैं। सब संसारियों के पिछला अनिःसरणस्वरूप तैजस होता है।

५—कार्माणशरीर का लक्षण—ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों के समूह को कार्माणशरीर कहते हैं।

बन्धन नामकर्म का लक्षण या भेद—

जिस कर्म के उदय से पाचों शरीरों के पुद्गल परस्पर बँधते हैं उसे बन्धननामकर्म कहते हैं। औदारिकबन्धन, वैक्रियिकबन्धन, आहारकबन्धन, तैजसबन्धन और कार्माणबन्धन ये ५ बन्धन नामकर्म के भेद हैं।

संघातनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पाचों शरीरों के परमाणु परस्पर मिलकर छिद्ररहित हो एकता को प्राप्त हो जाते हैं उसे संघात नामकर्म कहते हैं। औदारिकसंघात, वैक्रियिकसंघात, आहारक संघात, तैजससंघात और कार्माणसंघात ये ५ संघात नामकर्म के भेद हैं।

संस्थाननामकर्म का लक्षण या भेद—

जिस कर्म के उदय से शरीरों का आकार बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं। समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान और हुण्डकसंस्थान ये ६ संस्थाननामकर्म के भेद हैं।

१—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार ऊपर नीचे तथा बीच में समान विभाग से साँचे में ढला जैसा उत्पन्न होता है उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार वटवृक्ष के समान नाभि के नीचे का भाग पतला और ऊपर का भाग मोटा होता है उसे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान कहते हैं।

३—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार बाँमी के समान ऊपर का भाग पतला और नीचे का भाग मोटा होता है उसे स्वातिसंस्थान कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से पीठ के भाग में बहुत से पुद्गलों का समूह होता है अर्थात् पीठ कुछ उठी रहती है उसे कुब्जक संस्थान कहते हैं।

५—जिस कर्म के उदय से शरीर बौना अर्थात् बहुत छोटा या ठिगना होता है उसे वामनसंस्थान कहते हैं।

६—जिस कर्म के उदय से शरीर के अंग या उपांग कहीं के कहीं, छोटे या बड़े कम या अधिक होते हैं अर्थात् शरीर का आकार बेडौल या भद्दा होता है उसे हुंडकसंस्थान कहते हैं।

संहनननामकर्म का लक्षण या भेद—

जिस कर्म के उदय से हाड़ वगैरह के बन्धन में विशेषता होती है उसे संहनननामकर्म कहते हैं। वज्रवृषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्धनाराचसंहनन, कीलक संहनन और असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन ये ६ संहनन नामकर्म के भेद हैं।

१—जिस कर्म के उदय से वृषभ (नसों के हाड़ों का बन्धन) नाराच (कील) और संहनन (हाड़ों का समूह) ये तीनों वज्र के समान अभेद्य होते हैं उसे वज्रवृषभनाराचसंहनन कहते हैं। इस संहनन वाला प्राणी नियम से मोक्ष को जाता है।

२—जिस कर्म के उदय से कीलें या हाड़ तो वज्रसमान होते हैं परन्तु नसों का जाल वज्रसमान नहीं होते उसे वज्रनाराच संहनन कहते हैं।

स्वर्ग, नरक, एकेन्द्रिय, कार्माणशरीर आहारकशरीर चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध के संहनन नहीं होता।

धर्मसमाधान पृष्ठ २६ से,—

३—जिस कर्म के उदय से हाड़ तथा सन्धियों में कीलें तो होती हैं परन्तु वे वज्र के समान कठोर नहीं होतीं और नसा जाल भी वज्र के समान कठोर नहीं होता उसे नाराचसंहनन कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से हाड़ों में एक तरफ कीलें लगी होती हैं तथा दूसरी ओर कीलें नहीं लगीं होतीं उसे अर्धनाराच संहनन कहते हैं।

५—जिस कर्म के उदय से हाड़ परस्पर कीलित (कील सहित) होते हैं उसे कीलकसंहनन कहते हैं।

६—जिस कर्म के उदय से हाड़ों की संधियाँ परस्पर कीलित नहीं होतीं परन्तु नसों, स्नायुओं और मांस से बँधी रहती हैं उसे असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन कहते हैं।

स्पर्शनामकर्म का लक्षण और भेद—

जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श गुण प्रगट होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं। कर्कश और मृदु आदि स्पर्श के ८ भेद हैं।

रसनामकर्म का लक्षण और भेद—

जिस कर्म के उदय से शरीर में रस (स्वाद) होता है उसे रसनामकर्म कहते हैं। खट्टा और मीठा आदि रस के ५ भेद हैं।

काल और प्राणी की अपेक्षा संहनन का विभाग—

प्रथम द्वितीय अरु तृतियकाल में पहिला जानो।
चौथे षट् संहनन, पंचमें तीन बखानो॥
कर्मभूमि तिय तीन, एक छट्टे के माहीं।
विकल चतुष्कै एक एक इन्द्रिय के नाहीं॥

चचासमाधान से

गन्धनामकर्म के लक्षण और भेद—

जिस कर्म के उदय से शरीर में गन्ध होती है उस गन्ध नामकर्म कहते हैं। खुशबू और बदबू ये दो गन्ध के भेद हैं।

वर्णनामकर्म का लक्षण और दृष्टान्त—

जिस कर्म के उदय से शरीर में वर्ण (रंग) होता है उसे वर्णनाम कर्म कहते हैं। कृष्ण, पीत आदि वर्ण के ५ भेद हैं।

आनुपूर्व्यनामकर्म का लक्षण, दृष्टान्त और भेद—

जिस कर्म के उदय से अन्य गति को जाते हुए प्राणी के आत्मा का आकार विग्रहगति में पूर्व शरीर के आकार रहता है उसे आनुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं। जैसे कोई मनुष्य मर कर तिर्यंग्गति को रवाना हुआ, जब तक वहाँ न पहुँचा तब तक विग्रहगति में मनुष्य पर्याय का आकार बना रहा, उस आकार को तिर्यग्गत्यानुपूर्वी समझना चाहिये। नरकगत्यानुपूर्वी आदि आनुपूर्वी के ४ भेद हैं।

अगुरुलघु नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से प्राणी का शरीर भारीपन से लोह पिण्ड के समान नीचे नहीं पड़ जाता है और हल्केपन से रुई के समान ऊपर नहीं उड़ जाता है उसे+अगुरुलघु नामकर्म कहते हैं।

उपघातनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपना ही घात या बन्धन करने वाले अङ्ग (अवयव) होते हैं उसे उपघात नामकर्म कहते हैं। जैसे—बारहसिंगा के सींग आदि।

+यहाँ पर शरीर सहित आत्मा के विषय में अगुरुलघु प्रकृति मानी गई है। अन्य द्रव्यों में जो अगुरुलघुत्व होता है वह उनका स्वाभाविक गुण होता है।

परघातनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पर का घात या बन्धन करने वाले अङ्ग (अवयव) होते हैं उसे परघात नामकर्म कहते हैं। जैसे सिंह का डक, रीछ की जीभ, शेर के नख और बैल के सींग आदि।

आतपनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पर को आतपकारी शरीर होता है उसे आतप नाम कर्म कहते हैं। इस कर्म का उदय सूर्य विमानों के मणिस्वरूप पृथिवीकायिक बादर पर्याप्तक जीव के होता है।

उद्योतनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रकाश होता है उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं। इस कर्म का उदय चन्द्रविमान के पृथिवीकायिक जीवों के तथा पटबीजना (जुगनू) आदि के होता है।

विहायोगतिनामकर्म का लक्षण व भेद—

जिस कर्म के उदय से आकाश में गमन होता है उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके प्रशस्तविहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति ये दो भेद हैं।

१—जिस कर्म के उदय से हंस, हाथी और गाय की चाल के समान सुन्दर गमन होता है उसे प्रशस्तविहायोगति कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से ऊँट और गधा की चाल के समान भद्दा गमन होता है उसे अप्रशस्तविहायोगति कहते हैं।

उच्छ्वासनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से शरीर में श्वास चलता है उसे उच्छ्वास नामकर्म कहते हैं।

प्रत्येकशरीर नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से एक शरीर एक ही आत्मा के भोगने योग्य होता है उसे प्रत्येकशरीर नामकर्म कहते हैं।

साधारणशरीर नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से एक शरीर बहुत से जीवों के बार बार भोगने योग्य होता है उसे साधारणशरीर कहते हैं। जैसे मूली, गाजर आलू आदि में निगोदिया जीव का शरीर साधारण होता है।

त्रसनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय में आत्मा द्वीन्द्रिय आदि में जन्म लेता है उसे त्रसनामकर्म कहते हैं।

स्थावर नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से आत्मा पृथिवी और जल आदि एकेन्द्रियों में जन्म लेता है उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं।

सुभगनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपना शरीर देखते ही दूसरे को अपने पर प्रीति हो जाती है उसे सुभगनामकर्म कहते हैं।

दुर्भगनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपना शरीर रूपादिगुणों से युक्त होने पर भी दूसरों को बुरा मालूम होता है—अप्रीति मालूम होती है उसे दुर्भगनामकर्म कहते हैं।

सुस्वर नामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से सुन्दर स्वर अर्थात् सबको मीठा लगने वाली आवाज प्राप्त होती है उसे सुस्वरनामकर्म कहते हैं।

एक वृक्ष में वृक्ष भर का स्वामी एक जीव तथा फूल, पत्ते, फल आदि के स्वामी अलग अलग जीव भी होते हैं।

अयशःकीर्तिनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपने दुर्गुण प्रगट होते हैं उसे अयशःकीर्तिनामकर्म कहते हैं।

तीर्थंकरनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पंचकल्याणक आदि अनुपम विभूति युक्त तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है उसे तीर्थंकरनामकर्म कहते हैं।

गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

१ उच्चगोत्र और २ नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकमान्य उच्चकुल में जन्म होता है उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकनिन्द्य नीचकुल में जन्म होता है उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं।

अन्तरायकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये ५ अन्तरायकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से यह जीव दान नहीं दे सकता है उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी को लाभ (फायदा या मुनाफा) नहीं हो पाता उसे लाभान्तरायकर्म कहते हैं।

३—जिस कर्म के उदय से भोग करने का इच्छुक भी प्राणी भोग नहीं कर पाता है उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से उपभोग का इच्छुक भी प्राणी उपभोग नहीं कर पाता है उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं।

वीर्यान्तरायकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से शक्ति या सामर्थ्य में हीनता, कायरता या अनुत्साहता होती है उसे वीर्यान्तरायकर्म कहते हैं।

प्रश्नावली—

१—अगुरुलघु, अनादेय, अवधिज्ञान, आनुपूर्व्य, आहारकशरीर, कर्म, नपुंसकवेद, नरकगत्यानुपूर्वी, नीचगोत्र, नोकषाय, प्रचलाप्रचला, मतिज्ञानावरण, मनुष्यायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वीर्यान्तराय, सातावेदनीय, साधारण, संहनन और संस्थान आदि की परिभाषा बतलाइये?

२—अकषाय, आनुपूर्व्य, कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ, अमुककर्म की मूलप्रकृतियाँ, संहनन, संस्थान और शरीर के भेद या नाम कहिये?

३—सब से ज्यादह और सबसे कम प्रकृतियाँ किस कर्म की होती हैं?

४—किन किन कर्मों की प्रकृतियों में २ या ३ का भाग पूरा चला जाता है?

५—नाम और मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के पूरे पूरे नाम गिनाइये?

६—नामकर्म की ऐसी प्रकृतियाँ बतलाइये जो एक दूसरे से उलटी हैं?

७—ऐसे जीव बताओ जिनके आनुपूर्वी, कर्म, पर्याप्ति, रूप, संहनन, संस्थान और शरीर नहीं होते?

८—देव, नारकी, मनुष्य, स्त्री, तीर्थंकर, वृक्ष, भिक्षु, अग्नि, बन्दर, सिंह, सर्प, कुत्ता इनके कौन कौन आनुपूर्वी, इन्द्रिय, गति, जाति, पर्याप्ति संहनन, संस्थान और शरीर होते हैं?

९—नीचकुल में पैदा यश, निद्रा पर निद्रा, कंजूसी,

अयश कीर्तिनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपने दुर्गुण प्रगट होते हैं उसे अयश कीर्तिनामकर्म कहते हैं।

तीर्थंकरनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पंचकल्याणक आदि अनुपम विभूति युक्त तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है उसे तीर्थंकरनामकर्म कहते हैं।

गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

१ उच्चगोत्र और २ नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकमान्य उच्चकुल में जन्म होता है उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकनिन्द्य नीचकुल में जन्म होता है उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं।

अन्तरायकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये ५ अन्तरायकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से यह जीव दान नहीं दे सकता है उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी को लाभ (फायदा या मुनाफा) नहीं हो पाता उसे लाभान्तरायकर्म कहते हैं।

३—जिस कर्म के उदय से भोग करने का इच्छुक भी प्राणी भोग नहीं कर पाता है उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से उपभोग का इच्छुक भी प्राणी उपभोग नहीं कर पाता है उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं।

वीर्यान्तरायकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से शक्ति या सामर्थ्य में हीनता, कायरता या अनुत्साहता होती है उसे वीर्यान्तरायकर्म कहते हैं।

प्रश्नावली—

१—अगुरुलघु, अनादेय, अवधिज्ञान, आनुपूर्व्य, आहारकशरीर, कर्म, नपुंसकवेद, नरकगत्यानुपूर्वी, नीच गोत्र, नोकषाय, प्रचलाप्रचला, मतिज्ञानावरण, मनुष्यायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वीर्यान्तराय, सातावेदनीय, साधारण, संहनन और संस्थान आदि की परिभाषा बतलाइये?

२—अकषाय, आनुपूर्व्य, कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ, आयुकर्म की मूलप्रकृतियाँ, संहनन, संस्थान और शरीर के भेद या नाम कहिये?

३—सब से ज्यादह और सबसे कम प्रकृतियाँ किस कर्म की होती हैं?

४—किन किन कर्मों की प्रकृतियों में २ या ३ का भाग पूरा चला जाता है?

५—नाम और मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के पूरे पूरे नाम गिनाइये?

६—नामकर्म की ऐसी प्रकृतियाँ बतलाइये जो एक दूसरे से उलटी हैं?

७—ऐसे जीव बताओ जिनके आनुपूर्वी, कर्म, पर्याप्ति, रूप, संहनन, संस्थान और शरीर नहीं होते?

८—देव, नारकी, मनुष्य, स्त्री, तीर्थंकर, वृक्ष, बिच्छू, अग्नि, बन्दर, सिंह, सर्प, कुबड़ा इनके कौन कौन आनुपूर्वी, इन्द्रिय, गति, जाति, पर्याप्ति संहनन, संस्थान और शरीर होते हैं?

९—नीचकुल में पैदा यश, निद्रा पर निद्रा, कंजूसी,

अयश कीर्तिनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से अपने दुर्गुण प्रगट होते हैं उसे अयश कीर्तिनामकर्म कहते हैं।

तीर्थंकरनामकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से पंचकल्याणक आदि अनुपम विभूति युक्त तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है उसे तीर्थंकरनामकर्म कहते हैं।

गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

१ उच्चगोत्र और २ नीचगोत्र ये दो गोत्रकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकमान्य उच्चकुल में जन्म होता है उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी का लोकनिन्द्य नीचकुल में जन्म होता है उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं।

अन्तरायकर्म की प्रकृतियाँ या भेद—

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये ५ अन्तरायकर्म के भेद या प्रकृतियाँ हैं।

१—जिस कर्म के उदय से यह जीव दान नहीं दे सकता है उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं।

२—जिस कर्म के उदय से प्राणी को लाभ (फायदा या मुनाफा) नहीं हो पाता उसे लाभान्तरायकर्म कहते हैं।

३—जिस कर्म के उदय से भोग करने का इच्छुक भी प्राणी भोग नहीं कर पाता है उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं।

४—जिस कर्म के उदय से उपभोग का इच्छुक भी प्राणी उपभोग नहीं कर पाता है उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं।

वीर्यान्तरायकर्म का लक्षण—

जिस कर्म के उदय से शक्ति या सामर्थ्य में हीनता, कायरता या असमर्थता होती है उसे वीर्यान्तरायकर्म कहते हैं।

प्रश्नावली—

१—अगुरुलघु, अनादेय, अवधिज्ञान, आनुपूर्व्य, आहारकशरीर, कर्म, नपुंसकवेद, नरकगत्यानुपूर्वी, नीच गोत्र, नोकषाय, प्रचलाप्रचला, मतिज्ञानावरण, मनुष्यायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, माया अन्तराय सातावेदनीय, साधारण, संहनन और संस्थान आदि की परिभाषा बतलाइये ?

२—कषाय, आनुपूर्व्य, कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ अमुक कर्म की मूलप्रकृतियाँ, संहनन, संस्थान और शरीर के भेद या नाम कहिये ?

३—सब से ज्यादह और सबसे कम प्रकृतियाँ किस कर्म की होती हैं ?

४—किन किन कर्मों की प्रकृतियों में २ या ३ का भाग पूरा चला जाता है ?

५—नाम और मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के पूरे पूरे नाम गिनाइये ?

६—नामकर्म की ऐसी प्रकृतियाँ बतलाइये जो एक दूसरे से उल्टी हैं ?

७—ऐसे जीव बताओ जिनके आनुपूर्वी, कर्म, पर्याप्ति, रूप, संहनन, संस्थान और शरीर नहीं होते ?

८—देव, नारकी, मनुष्य, स्त्री, तीर्थंकर, वृक्ष, बिच्छू, अग्नि, बन्दर, सिंह, सर्प, कुबड़ा इनके कौन कौन आनुपूर्वी, इन्द्रिय, गति, जाति, पर्याप्ति संहनन, संस्थान और शरीर होते हैं ?

९—नीचकुल में पैदा होना, निद्रा पर निद्रा, कंजूसी,

घृणा, बीमारी, अंगोपांग का ठीक ठीक रचना, आकाशगमन, अन्धापन, बहिरापन, लूलापन, लम्बी नाक, छोटी आरा, ठिगना शरीर, अपने या दूसरे पर प्यार, हंसी, अच्छा गवैयापन, बदनामी और अतिशयों का प्राप्ति किस किस कर्मप्रकृति के उदय से होती है ?

१०—हमारी प्रशंसा क्या नहीं होती ? सम्यग्दर्शन क्ब तक नहीं होता ? हमको याद क्यों नहीं होता ? हम हर जगह क्या नहीं आ सकते ? हम तीर्थंकर क्या नहीं होते ? हम मुनि या श्रावक क्यों नहीं हो पाते ? हम काले क्या हैं ? देव अपना शरीर छोटा बड़ा कैसे कर लेते हैं ?

११—अयश कीर्ति, जुगुप्सा, तो १२र, दर्शायु मिथ्यात्व, शुभ, स्त्यानगृद्धि, शुभ और हुँडक प्रकृति के उदय से क्या क्या होता है ?

१२—अगुरुलघुत्वगुण और अगुरुलघुप्रकृति में, रति और सुभग में, सम्यग्दर्शन और सम्यक्प्रकृति में, साधारण और सूक्ष्म में, संहनन और संस्थान में, शुभ और सुभग में क्या अन्तर है ?

१३—श्रुतदर्शन और मनःपर्ययदर्शन क्या नहीं होता ?

१४—मिथ्यादृष्टि देव के, घोड़ा होने वाले मनुष्य के और इन्द्र होने वाले मुनि के कौन कौन आनुपूर्वी होगी ?

पाठ ग्यारहवां
अन्तर-प्रदर्शन



१—द्रव्यपूजा वा भावपूजा में अन्तर—

द्रव्यपूजा में तो अष्टद्रव्य चढ़ाये जाते हैं किन्तु भावपूजा में केवल गुणगान किया जाता है यही इन दोनों में अन्तर है।

२—मूलगुण वा उत्तरगुणों में अन्तर—

मूलगुण तो असाधारण खास खास गुणों को कहते हैं किन्तु उत्तरगुण साधारण गुणों को कहते हैं। ×

३—अरिहन्त वा सिद्ध में अन्तर—

अरिहन्त के तो चार घातिया-कर्मों का ही नाश होता है किन्तु सिद्ध के आठ कर्मों का नाश हो जाता है।

४—अतुल्यबल वा अनन्तबल में अन्तर—

अतुल्यबल का कथन तो शरीरसम्बन्धी बल की अपेक्षा है किन्तु अनन्तबल का कथन अन्तरायकर्म के नाश से उत्पन्न आत्मबल की अपेक्षा है। यही इन दोनों में अन्तर है।

५—आचार्य उपाध्याय वा साधु में अन्तर—

आचार्य शिक्षा और दण्ड देते हैं, उपाध्याय पढ़ाते और पढ़ते हैं तथा साधु केवल आत्मचिन्तवन करते हैं।

६—व्यसन वा पाप में अन्तर—

पाप तो कभी कभी और भूल चूक कर क्रोध आदि के वश होकर किये जाते हैं किन्तु व्यसन आसक्ति और प्रेम वश सेवन किये जाते हैं। यही इन दोनों में अन्तर है।

× "यही इन दोनों में अन्तर है" यह वाक्य हर एक वाक्य के अन्त में लगा लेना चाहिए।

पर स्त्री और वेश्या में अन्तर—

७-परस्त्री के तो एक ही निश्चित स्वामी (पति) होता है किन्तु वेश्या के अनेक स्वामी होते हैं, जिसने पैसा दिया उसी को स्वामी बना लेती है। यही इन दोनों में अन्तर है।

८-अनिष्ट वा अनुपसेव्य में अन्तर—

अनिष्ट तो किसी रोगी आदि के लिये ही अभक्ष्य होता है किन्तु अनुपसेव्य सभी के लिये अभक्ष्य होता है।

९-अणुव्रत वा महाव्रत में अन्तर—

अणुव्रत में तो पाचों पापों का एकदेश त्याग किया जाता है किन्तु महाव्रतों में पाचों पापों का सर्वदेश त्याग किया जाता है यही इन दोनों में अन्तर है।

१०-दिग्व्रत वा देशव्रत में अन्तर—

दिग्व्रत की मर्यादा तो जीवनपर्यन्त के लिये होती है किन्तु देशव्रत की घड़ी, घँटा आदि नियमितकाल के लिये।

११-दिग्व्रत और अनर्थदण्डव्रत में अन्तर—

दिग्व्रत में तो मर्यादा के बाहर ही पापों का त्याग होता है किन्तु अनर्थदण्डव्रत में मर्यादा के भीतर भी त्याग किया जाता है।

१२-प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास में अन्तर—

प्रोषध में तो आरम्भ और विषयकषाय आदि का त्याग करते हुए एकबार भोजन किया जाता है, किन्तु उपवास में भोजन का सर्वथा त्याग रहता है और प्रोषधोपवास में पर्व के दिन आरम्भ, विषयकषाय तथा आहार को त्याग कर धारणा और पारणा के दिन भी एकासन किया जाता है।

१३-भोगोपभोगपरिमाण वा परिग्रहपरिमाणव्रत में अन्तर—

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत में जिस परिग्रह का परिमाण किया जाता है भोगोपभोगपरिमाणव्रत में उसमें भी कभी कभी कमी की जाती है।

१४-भोग वा उपभोग में अन्तर—

भोग तो एक ही बार भोगने योग्य होता है किन्तु उपभोग बार बार भोगने में आता है। यही इन दोनों में अन्तर है।

१५-यम और नियम में अन्तर—

यम में तो जीवनपर्यन्त के लिये भोगोपभोग का त्याग किया जाता है किन्तु नियम में घड़ी, घण्टा आदि परिमित काल के लिये भोगोपभोग का त्याग किया जाता है।

१६-अतिचार और अनाचार में अन्तर—

अतिचार में तो व्रत का अंश भंग होता है, जो औरों के दृष्टिगोचर नहीं होता, किन्तु अनाचार में व्रत का पूर्ण रूप से ही भंग हो जाता है, जो औरों के दृष्टिगोचर तब होने लगता है। यही इन दोनों में अन्तर है।

१७ श्रावकप्रतिमा और जिनप्रतिमा म अन्तर—

श्रावक की प्रतिमाओं में तो प्रतिमाशब्द से श्रावक के कर्तव्यों की कक्षा या श्रेणी से तात्पर्य है किन्तु जिनप्रतिमा में भगवान की मूर्ति से तात्पर्य है। यही इन दोनों में अन्तर है।

१८-सामायिकशिक्षाव्रत वा सामायिकप्रतिमा में अन्तर—

सामायिकशिक्षाव्रत में तो सामायिक के अतिचार कदाचित् लग सकते हैं किन्तु सामायिकप्रतिमा में अतिचार भी सर्वथा हटाने पड़ते हैं। यही इन दोनों में अन्तर है।

१९-प्रोषधव्रत वा प्रोषधप्रतिमा में अन्तर—

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत में तो कभी अतिचार भी लग सकते हैं परन्तु प्रोषधप्रतिमा में अतिचार भी दूर करने पड़ते हैं।

२०-सचित्त और अचित्त में अन्तर—

सचित्त में तो जीव या अंकुर पैदा होने की शक्ति रहती है किन्तु अचित्त में ये दोनों बातें नहीं रहतीं।

२१-ब्रह्मचर्याणुव्रत वा ब्रह्मचर्यप्रतिमा में अन्तर—

ब्रह्मचर्याणुव्रत में तो अपनी स्त्री के साथ विषयसेवन का त्याग नहीं होता परन्तु ब्रह्मचर्यप्रतिमा में अपनी और पराई दोनों प्रकार की स्त्रियों का त्याग होता है। यही इन दोनों में अन्तर है।

२२-ब्रह्मचर्यमहाव्रत वा ब्रह्मचर्यप्रतिमा में अन्तर—

यद्यपि इन दोनों में ही स्त्रीमात्र का त्याग हो जाता है तथापि ब्रह्मचर्यप्रतिमा में ब्रह्मचर्यमहाव्रत जैसी विशुद्धता नहीं होती। ब्रह्मचर्यप्रतिमाधारी को वस्त्र छोड़ने में लज्जा आती है परन्तु ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारी नग्न रहता हुआ भी लज्जित नहीं होता। यही इन दोनों में अन्तर है।

२३-परिग्रहपरिमाणव्रत वा परिग्रहत्यागप्रतिमा में अन्तर—

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत में तो गृहस्थी के काम आने वाली दशप्रकार के परिग्रह की वस्तुएँ अपने पास रखी जाती हैं किन्तु परिग्रहत्यागप्रतिमा में धर्मसाधन के उपकरणों को छोड़ कर दश प्रकार के परिग्रहों का सर्वथा त्याग करना पड़ता है।

२४-क्षुल्लक वा ऐलक में अन्तर—

क्षुल्लक तो चादर वा पात्र रखते हैं और बाल कटवाते या मुंडाते हैं किन्तु ऐलक चादर वा पात्र नहीं रखते और केश लोंच करते हैं। यही इन दोनों में अन्तर है।

२५-धर्मभावना और धर्म में अन्तर—

धर्मभावना में तो कर्त्तव्यपालन का बार बार विचार मात्र किया जाता है किन्तु धर्म में कर्त्तव्य पालन किया जाता है।

२६-एकत्व वा अन्यत्वभावना में अन्तर—

एकत्वभावना में अकेलेपन का और अन्यत्वभावना में भिन्नपने का विचार किया जाता है।

२७-प्राण वा पर्याप्ति में अन्तर—

प्राण तो एक पर्याय में प्राप्त होकर उस पर्याय भर अटल रहते हैं किन्तु पर्याप्तियों में एक पर्याय में अनेकवार परिवर्तन होता रहता है।

२८-द्रव्यप्राण वा भावप्राण में अन्तर—

द्रव्यप्राणों का तो परिवर्तन और नाश भी हो जाता है किन्तु भावप्राणों का परिवर्तन और नाश नहीं होता।

२९-आस्रव वा बन्ध में अन्तर—

प्रथमक्षण में जो कर्मस्कन्धों का आगमन होता है वह तो आस्रव कहलाता है और द्वितीय आदि क्षण में उनका आत्मा में मिश्रित हो जाना बन्ध कहलाता है।

३०-आस्रव वा संवर में अन्तर—

आस्रव में तो कर्म आते हैं किन्तु संवर में रुकते हैं।

३१-निर्जरा वा मोक्ष में अन्तर—

निर्जरा में तो कर्म कुछ ही नष्ट होते हैं किन्तु मोक्ष में कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है।

३२-संस्थान और संहनन में अन्तर—

संस्थान के निमित्त से तो शरीर का आकार बनता है किन्तु संहनन के निमित्त से हाड़ों के बंधन में विशेषता होती है।

३३-साधारण वा प्रत्येक में अन्तर—

साधारण के आश्रित तो अनेक प्राणी रहते हैं किन्तु प्रत्येक के आश्रित एक ही प्राणी रहता है।

३४-रति और सुभग में अन्तर—

रति में तो अपना दूसरों पर प्रेम होता है किन्तु सुभग में दूसरों का अपने पर प्रेम होता है।

॥ ग्रन्थसमाप्ति ॥